# भागवत दर्शन

## भागवती स्तुतियाँ (५)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता।
कृतं वै प्रभुदत्तेन श्रीभागवतदर्शनम्॥

लेखक
श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन-भवन,
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

प्रथम संस्करण, शुद्ध श्रावण शु० वि० २०१५ ] [ मूल्य १।)

मुद्रक—भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, प्रयाग

# विषय-सूची



---

॥ श्रीहरिः ॥

# बहुत से पत्रों से एक पत्र

चिरकाल से भागवती कथा (भागवत दर्शन) प्रकाशित करने में कई कारणों से हम असमर्थ रहे। इस सम्बन्ध में हमारे पास प्रायः नित्य ही पत्र आते हैं, बहुत भाई तो नम्रता से लिखते हैं, बहुत से हमारी विवशता को समझकर केवल पूछते हैं, बहुत से कुछ रोष प्रकट करते हैं और बहुत से इतना रोष प्रकट करते हैं, कि आपे से बाहर हो जाते हैं। यहाँ उन सब पत्रों का उल्लेख करना संभव भी नहीं और आवश्यक भी नहीं, फिर भी पाठकों की जानकारी के लिये हम उनमें से एक पत्र यहाँ देते हैं। इससे पाठक पाठिकायें भागवती कथा के प्रेमी पाठकों की व्यग्रता का अनुमान लगा सकते हैं। एक सज्जन लिखते हैं—

बड़ी खेद की विषय है कि भागवत दर्शन के वार्षिक मूल्य दिये तीन वर्ष से अधिक होता है और इस अवधि में केवल ५ ही अंक प्राप्त हुए हैं साल भर से ऊपर होता है कोई अंक नहीं मिला है। भगवान् के नाम पर यह अंधेर क्यों हो रही है क्या यही महात्माओं की खेला है। जिससे विश्वास दिन प्रतिदिन घटता ही जाता है। अब क्या आशा की जा सकती है कि कलिकाल के महात्माओं को नाम पर यह ठग है बाकी सात अङ्क मिलेगा या नहीं कृपया सूचित करें कि विश्वास हो जावे और आगे की वृथा चिन्ता दूर होवे।

इस पत्र को पढ़ कर न तो हमें रोष ही आया और न बुरा ही लगा। किन्तु हमें तो उलटी प्रसन्नता ही हुई कि हमारे पाठक आगे के खण्डों को पढ़ने को कितने व्यग्र हैं। हमारे भाई ने जो

दोषारोपण किया है वह ठीक है। समय के प्रभाव से बहुत से लोगों की यह वृत्ति ही बन गयी है, कि पत्र पत्रिका निकालने का विज्ञापन दे देते हैं, वर्ष भर का चन्दा लोगों से इकट्ठा कर लेते हैं, फिर चुप हो जाते हैं। अधिकांश लोग ऐसे होने से लोग सच्चे लोगों पर भी सन्देश करने लगते हैं, किन्तु हम अपने पाठकों को विश्वास दिलाते हैं हमारी नीयत ऐसी नहीं है। जो सज्जन चाहें वे शेष खण्डों के दामों की अन्य पुस्तकें मँगा सकते हैं। ६६,६७ तो भेज ही रहे हैं। प्रयत्न कर रहे हैं ७२ तक शीघ्र ही छप जावें।

एक बात हमारे भाई ने बड़ी महत्त्वपूर्ण कही है कि कलियुग का प्रभाव है। यथार्थ में वृत्तिसंकर हो गया है। साधुओं का काम लिखना तथा उपदेश देना तो हो भी सकता है किन्तु प्रकाशन करके व्यापार करना कभी नहीं है। यद्यपि हमने इस नीयत से प्रकाशन नहीं किया था, किन्तु किसी भी नीयत से करो व्यापार तो व्यापार ही है और हम इसमें बुरी तरह असफल रहे, तथा इस असफलता से भी हमें प्रसन्नता ही है, भगवान् हमें चेतावनी दे रहे हैं अब भी चेतो।

आगे से हम १२ खण्डों की अग्रिम न्योछावर न मँगाया करेंगे। अब आगे लिखने को मन में उत्साह भी नहीं, किन्तु भगवान् को लिखाना ही होगा तो कोई अपना वश भी नहीं, जितने खण्ड छप जाया करेंगे पाठकों को सूचना दे दिया करेंगे, वे मँगालें। अन्त में प्रेमी पाठक पाठिकाओं से मेरी यही प्रार्थना है वे ऐसा आशीर्वाद दें या मनोकामना करें, कि मेरा भगवन् चरणारविन्दों में अनुराग बढ़े।

प्रभुदत्त

# सेवक-संस्मरण

( भूमिका )

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिप आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो रातिचाशिपः ॥

( श्रीभा० ७ स्क० १०अ० ५ श्लो० )

छप्पय

*संगी साथिन सहज समय संजोग जुटावै ।*
*जब लौं जाको जोग भोग भव माहिँ भुगावै ॥*
*पूर्व जनम के शत्रु मित्र पुनि पुनि मिलि जावैं ॥*
*सिमृति त्यागि कटु मधुर त्यागिकैं तनु चलिजावैं ॥*
*जड़ चेतन चर अचर जग, हरिमय जबहिँ लखायगो ।*
*मैं मेरो अज्ञानजिह, तुरतहिँ तबहिँ मिटाइगो ॥*

पाठक पाठिकाओं से मैं प्रथम ही कई बार प्रार्थना कर चुका हूँ, कि भागवतीकथाओं में तो मैं नियम और प्रस्तुत विपय में बँधा रहता हूँ, किन्तु भूमिका में मैं स्वतंत्र हूँ। वहाँ मैं जो चाहूँ लिख सकता हूँ, अपनी व्यक्तिगत बातें, जीवन की कटु मधुर स्मृ-

---

प्रह्लादजी नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"प्रभो ! यदि कोई सेवक स्वामी से सांसारिक कामनाओं की पूर्ति की इच्छा रख कर उसकी सेवा करता है, तो वह सच्चा सेवक नहीं है और जो स्वामी स्वामित्व की इच्छा रख कर धन तथा अन्य भोग्य पदार्थ स्वार्थ सिद्धि के निमित्त देता है, तो वह स्वामी भी सच्चा स्वामी नहीं है।

तियों को लिखने में स्वतंत्र हूँ। और पाठक पठिकाओं ने मुझे यह छूट सहर्ष दे रखी है, अपने जीवन की घटनायें लिखने में आत्मप्रशंसा भी हो ही जाती है, कुछ अपना बड़प्पन भी बहुत रोकने पर प्रकट हो ही जाता है, किन्तु "भागवती कथा" के पाठक मेरे अपने हैं न ? उनका मुझ में अपनापन है, जहाँ अपनापन होता है, वहाँ दोप भी गुण ही दिखायी देने लगते हैं। प्रेम की सब से मोटी पहिचान यही है जहाँ दोप दृष्टि रहे ही नहीं। जहाँ अपनापन नहीं होता, मनमें ईर्ष्या द्वेष, डाह, तथा जलन होती है, वहाँ गुण भी दोप ही दिखायी देने लगते हैं। जिसमें अपनापन होता है, उसके जीवन की निजी बातें सुनने में एक अद्भुत रस आता है, अपनापन न रहने पर लोग कहने लगते हैं—"जहाँ देखो, वहीं अपनी हाँकने लगते हो। एक सज्जन ने मुझे लिखा कि "प्रतीत होता है, ब्रह्मचारी जी की अब लिखने की सब पूँजी समाप्त हो गयी हैं, तभी तो ऐसी बातें लिखते हैं, कि आश्रम के लड़के अमरूद चुरा लेते हैं, ये बातें कभी भागवती कथा के अंतर्गत नहीं आ सकतीं।"

उन भोले भाई को यह पता नहीं कि भागवती कथा इतना अगाध, अपार सागर है, कि उसका भंडार कभी समाप्त होने ही वाला नहीं। मैं तो एक दो हाथों वाला, एक लेखनी वाला, अल्पज्ञ प्राणी हूँ, यदि सहस्र हाथों से सहस्र लेखनियों से शारदा भी सब समय लिखती रहें तब भी भागवती कथायें पूरी नहीं लिखी जा सकतीं। रही अमरूद चोरी की बात, सो असली भागवती कथा तो यही है। आत्माराम पूर्ण काम प्रभु को क्या पड़ी थी जो अनन्त ऐश्वर्य-सम्पूर्ण-भग को छोड़कर वे इस अवनि पर अवतरित होते, वे बाल गोपाल बनकर अवनि पर बाल सुलभ क्रीड़ा करते हैं और अपने जनों को सुख देते हैं, चोरी से माखन [illegible]

हुए कृष्ण को देखकर नंदरानी को कितना सुख होता होगा, उसे मातृहृदय पाये बिना कौन अनुभव कर सकता है। एक बहुत बड़े व्यापारी जिनकी सम्पूर्ण देश में बड़ी भारी ख्याति है, मुझसे बड़ा स्नेह रखते हैं। बाल्यकाल में उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, वे अपने जीवन की घटना सुनाते थे, कि जब हम बहुत छोटे थे, तब हमारी दादी दही बिलोकर मक्खन एक हंडी में रखती जाती थीं, हम चुपके से जाते दादी को कुछ दिखाता भी कम था, हम हंडी में से माखन निकाल कर खालेते, फिर भूठे हाथों से लेने का प्रयास करते तो दूर बैठी हमारी माँ संकेत से हमें मना कर देती। फिर दादी हंडी में हाथ डालकर कहती—"बहू! इसमें का माखन कौन ले गया ?" माँ कहती-क्या-पता कौन ले गया ? वे बताते थे हम माँ के सामने ही दादी की हंडी से माखन चुराते थे, किन्तु माँ माखन चोरी के लिये हमें निषेध नहीं करती, जूठे हाथों से हंडी को छूने के लिये संकेत से मना करती। ग्वाल बालों की चोरी को देखकर जिसका हृदय भर नहीं आता वह या तो पाषाण हृदय है, या कोई त्रिगुणातीत। आप से मैं अपनी ही बात सत्य सत्य कहता हूँ जब किसी अबोध छोटे बच्चे को चोरी करते पकड़ता हूँ, तो कभी भूल से क्रोध आ गया हो तो उसकी बात तो कहता नहीं, किन्तु वैसे जब मैं ऊपर से क्रोध की सी मुद्रा बनाकर उसके कान पकड़ता हूँ,तब उसकी लज्जा संकोच भय और ग्लानि से मिश्रित भोली भाली सूरत को देख कर विमुग्ध हो जाता हूँ, उसमें मुझे बाल गोपाल माखनचोर के दर्शन होने लगते हैं, जब वह टप टप आंसू बहाने लगता है तब हृदय गीला गीला हो जाता है, वे पुरुष धन्य हैं जिन्हें ऐसे बाल गोपालों के आँसू देखने को मिलते हैं। भला अबोध बच्चों की अपने ही घर में यह सरस लीला क्या चोरी है ? यह तो वात्सल्य रस की लीला है, किन्तु जो

नीरस हैं, उन्हें राधाकृष्ण की सरस दिव्य शृङ्गारमयी आलिंगन परिरम्भण, विरह आदि लीलाओं में अश्लीलता दिखाई देती है। अरे, देवताओ ! तुम प्रत्येक क्षेत्र में अपने आदर्श को ही घुसेड़वे रहोगे तो वात्सल्य,सख्य, दास्य और मधुर रस ये कहाँ जायँगे। साहित्य के नव रसों की प्रतीति होगी कहाँ ? तुम गाने बजाने नाचने से द्वेष करोगे, शृंगार रस को अश्लील कहोगे तो साहित्य-कारों की परिभाषा में तुम "पुच्छ विषाण हीन" साक्षात् पशु ही कहलाओगे न ?

हाँ,तो मैं तो बहक गया। आज की प्रस्तावना में मैं कुछ अपने दिवंगत सेवकों का स्मरण करूँगा। यह संसार परस्पर के सहयोग से ही चल रहा है। घर की ईंटें, चूना, कड़ी, लकड़ियाँ, लोहा तथा अन्य सामग्रियाँ आपस में सहयोग न करें तो घर एक दिन भी ठहर नहीं सकता,कोई भी संसार में यह नहीं कह सकता कि अमुक कार्य मुझ अकेले की ही कृति है, सभी कार्यों में सहायकों की आवश्यकता होती है, कुछ सहायक ऐसे होते हैं, कि वे घर की नींव में लगे पत्थरों के समान दबे ढके ही रहते हैं, सर्व साधारण की दृष्टि में ये आते ही नहीं। हम मकान के ऊपरी पत्थरों को ही देखते हैं और उनकी तथा घर की प्रशंसा करते हैं, हमें यह पता नहीं कि यह सम्पूर्ण घर नींव के नीचे दबे हुए पत्थरों पर ही ठहरा हुआ है। इतने बड़े बड़े लेखक कवि, साहित्यिक शूर वीर तथा संत हुए हैं, उनके बहुत से सच्चे सहायक सेवक रहे होंगे, उन्हीं की सहायता तथा सेवा के कारण वे बड़े बड़े कार्यों को करने में समर्थ हो सके हैं, किन्हीं किन्हीं सेवक का नाम प्रसंगवश भले ही प्रकाश में आ गया हो, नहीं तो वे नींव के पत्थरों की भांति चुपचाप उनके यशरूपी घर के बोझ को लादें मुख छिपाये संसार से ओझल हुए पड़े रहते हैं।

सच्चे सेवक सभी को सुलभ नहीं होते। सीधा सच्चा कर्तव्य परायण सेवक, स्वामि भक्त, सीधा उपयोगी पशु, पति परायणा सती साध्वी सर्व सद्गुण सम्पन्न पत्नी ये भाग्य शालियों को ही प्राप्त होते हैं। यह एक जन्म का फल नहीं होता जन्मान्तरीय संस्कार होते हैं, जिससे पिछले जन्म से सद्भाव पूर्ण सम्बन्ध रहा होगा, वही इस जन्म में हार्दिक प्रेम प्रकट करेगा और सच्चे हृदय से सेवा, सत्कार कर सकेगा। जन्मान्तरीय सम्बन्ध के बिना कोई अपनापन रख ही नहीं सकता कोई प्रेम प्रकट कर ही नहीं सकता। सहस्रों गैयों में से बछड़ा अपनी माँ को पहिचान लेगा। घूँघट मारे सैकड़ों स्त्रियों में बैठी अपनी माता से बालक जाकर लिपट जायगा, इसी प्रकार जन्मान्तरीय संस्कार वाले कहीं भी उत्पन्न क्यों न हों,वे सात समुद्र पार से आकर मिल जाते हैं और अपना प्रेमभाव दर्शाते हैं।

मेरा जन्म बहुत ही साधारण निर्धन परिवार में हुआ, भाग्य वश शरीर भी ऐसा मिला जो जन्म से ही रोगों का आलय है। वैसे तो सभी शरीरों को व्याधिमंदिर बताया है, किन्तु कुछ शरीर अपथ्य से, कुपथ्य से तथा किन्हीं अन्य कारणों से पीछे से रुग्ण होते हैं, कुछ जन्म से ही रोगी होते हैं, मेरा शरीर जन्मजात रोगी है। रोगी को पग पग पर परमुखापेची रहना पड़ता है। उसे यदि सहृदय सहायक, सच्चे सेवक, स्नेहीयुक्त सम्बन्धी न मिलें तो कोई विशिष्ट कार्य करना तो पृथक् रहा, उसे अपना जीवन ही भार हो जाता है।

सौभाग्य से मुझे सच्चे सहायक सहृदय सेवकों की अब तक कमी नहीं हुई। बहुत से लोग आश्चर्य करते हैं ब्रह्मचारीजी इतने सक्रिय आंदोलनों में सम्मिलित होते हुए भी-इतना धूम धड़ाका करते हुए भी-इतना लिख कैसे लेते हैं। इसका मुख्य कारण है,

मेरे शरीर की रेख देख रखनेवाले सेवकों की सक्रिय सहायता मेरे बहुत से साथी रहे हैं और हैं, उनकी संख्या सैकड़ों नहीं सहस्रों हैं । यहाँ मुझे उनकी सूची नहीं देनी है। सूची दे भी नहीं सकता मेरी भुलक्कड़ प्रकृति है, आज याद करने भी बैठूँ तो सब याद नहीं आवेंगे। जिसका संपूर्ण जीवन ही परमुखापेक्षी रहा हो, जो जन्म से ही समाज पर भार रहा हो, जिसे एक एक दाने अन्न के लिये एक-एक टुकड़े के लिये दूसरों का मुख जोहना पड़ता हो, उसके सहायकों कृपालुओं और सहयोगियोंको संख्या करना असंभव है। वह तो अणु परमाणु के ऋण से-कृतज्ञताके भारसे-दबा हुआ है। वह कितनों को-किन शब्दों में क्या कह कर कृतज्ञता प्रकट करे। किन्तु एक दिन एक मेरे बड़े स्नेही सेवक परलोक वासी हो गये; उनकी माँ रोती रोती मेरे पास आई और रोते रोते करने लगी उसकी बड़ाई । कैसे उसने अपने पांच भौतिक शरीर को त्यागा कैसे वह मेरा स्मरण करता रहा।" कुछ दिन पूर्व वह घर चला गया था अपनी माँ का एक मात्र ही पुत्र था, उसी के निकट जाकर योगियों को भाँति उसने शरीर को छोड़ दिया और पहिले से बता भी दिया । हम अपने इस चोले को अब छोड़ेंगे।" उसकी माँ ने आश्रममें आकर भंडारा किया, उसी समय मेरे मनमें उसके संस्मरण लिखने की इच्छा हुई। फिर इसी प्रसंग में १०,५ ऐसे ही नाम और याद आगये। सोचा लाओ उन सभी दिवंगत सहयोगियों का स्मरण करलूँ। किन्तु ये संस्मरण पूर्ण नहीं अपूर्ण हैं, और भी बहुत से रहे होंगे और हैं भी, किन्तु अब वे याद नहीं आ रहे हैं, अच्छा है जितनों को भूल जायँ उतना ही अच्छा है, स्मरण रखना कोई अच्छी बात थोड़े ही है किन्तु जो मरते मरते एक कसक छोड़ जाते हैं, तीक्ष्ण छाप लगा जाते हैं वे भुलाने से भी नहीं भूलते । बहुत से ऐसे हैं, कि जिनका तो अब नाम ही

भूल गया हूँ, जो याद आते हैं उन्हीं का उल्लेख मात्र किये देता हूँ।

१—गोबिन्दजी

ऐसा लगता है, कि वह मध्य प्रान्त में विलासपुर जिले का था, धमतरी का नाम बहुत लेता था, उसी के आस पास उसका कोई गाँव रहा होगा। जिन दिनों मैं काशी में रहता था, नगर के बाहर एक सुविस्तृत बगीचे में मेरा निवास था, उसमें एक कोठी थी, कोठी के स्वामी पहिले औरङ्गाबाद मुहल्ले के बहुत बड़े धनी थे, पीछे उनकी आर्थिक स्थिति कुछ बिगड़ गयी। वे हमसे कोठी का नाम मात्र को किराया ले लेते थे, साहित्य सेवा के द्वारा मुझे जो कुछ प्राप्त होता, उसे सभी साथी संगी बाँट कर खालेते। वहाँ पर एक छोटा मोटा आश्रम ही खोल रखा था। निर्धन और निस्सहायावस्था में विद्याध्ययन करना कितना क्लेशकर है, असहाय विद्यार्थियों को पग पग पर कितनी असुविधायें होती हैं, इसका मुझे अपने जीवन में कटुअनुभव हो चुका था। अतः ऐसे जो भी छात्र आते उन्हें मैं अपने पास रख लेता, पीछे उनका कहीं सहारा हो जाता, कहीं छात्रवृत्ति मिल जाती किसी विद्यालय में प्रवेश हो जाते तो वे चले जाते। ऐसे बहुत लड़के थे, निरञ्जनजी, चन्द्रजी, इन्द्रजी,गोबिन्दजी,रामजी औरोंका नाम याद नहीं रहा। उनमें से कोई सन्त महन्त हो गये, कोई भारत सरकार के उच्च तथा साधारण पदों पर सेवा कर रहे हैं, कोई दल के नेता बन गये।

जबआश्रमछोड़कर वाराणसीसे गंगा किनारे किनारे वैराग्य के वेगमें हिमालय की यात्रा की,तो इन्द्रजी और गोबिन्दजी दो लड़के मेरे साथ साथ चले। ये ही लोग दोपहर होने पर गाँवों से भिक्षा माँग लाते और मेरे शरीर की यथा साध्य रेख देख रखते। इन्द्र जी तो आज कल भारत सरकार के मंत्रालय में हैं" डाक तार" के

स्यात् संपादक हैं, गोबिन्दजी पता नहीं किस लोक में विचरण करते होंगे। मनुष्य कितना बड़ा अज्ञानी जीव है, उसे यह भी पता नहीं एक क्षण आगे क्या होगा? मरकर कौन जीव कहाँ जायगा। पिछले जन्म में हम कौन थे इस समय हम जो कार्य कर रहे हैं, किस देव की प्रेरणा से कर रहे हैं, इसका परिणाम क्या होगा? जो मानव भूत, भविष्य तथा वर्तमान के सम्बन्ध में भी अज्ञानी है, वह अपने को ज्ञानी और बुद्धिमान होने का दावा करता है, उससे बड़ा मूर्ख और कौन होगा?

हाँ तो वाराणसी से गंगा किनारे किनारे माँगते खाते चलते चलते, हम बुलंदशहर की गंगा तटवर्ती तहसील अनूपशहर में पहुँचे। यह मेरा पूर्वकाल में राजनैतिक कार्यक्षेत्र रहा है, पहिले भी मैं यहाँ आकर रहता था। इसके आस पास बड़े बड़े उच्च कोटि के साधु सन्त रहते थे, एक प्रकार से उस प्रान्त के महात्मओं का यह एक गढ़ ही था। रामघाट से लेकर गढ़मुक्तेश्वर तक सैकड़ों अच्छे अच्छे त्यागी तपस्वी महात्मा रहते थे। स्वामी उमानंदजी, बंगाली स्वामी, स्वामी हीरानंदजी तथा और भी अनेक प्रसिद्ध महात्मा इसी बीच हो चुके हैं। उन दिनों भी पूज्य श्री हरि बाबा, श्री उड़िया बाबा, श्री भोले बाबा, श्री अच्युतमुनिजी, स्वामी शास्त्रानंदजी और स्वामी निर्मलानंदजी बंगाली स्वामी तथा और भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध महात्मा यहाँ थे। जिनमें से कुछ अभी वर्तमान हैं, कुछ अपने पांचभौतिक शरीर को त्याग कर न जाने कहाँ चले गये। उनकी मीठी मीठी स्मृतिमात्र अवशेष रह गयी है।

गोविन्दजी ने इच्छा प्रकट की कि मैं तो यहीं रह जाऊँ। मैंने उसे अनुमति दे दी। वह वहीं पर गंगा तट पर रहने लगा। छोटी सी उसने एक पाठशाला बना रखी थी, उसमें वह हरिजन तथा अन्य बालकों को पढ़ाता था और भगवान् का भजन करता था।

इधर बहुत दिनों के पश्चात् जब घोर संग्रहणी होने पर मैं लौटकर अनूपशहर आगया, तो उसने मेरी बड़ी सेवा की। उसने कुछ पैसे जोड़ रखे थे, सभी मेरी सेवा में व्यय कर दिये और मुझे कुछ भी नहीं बताया, अंत में एक दिन उसने कहा—"मेरे पास जो भी कुछ था सब समाप्त हो गया। वह रात्रि दिन सेवा में जुटा रहता था। सेवा करने का उसे व्यसन था, वह कभी थकता नहीं था और न छोटी सी छोटी सेवा से ऊबता ही था, मैं उसे जहाँ पर जिस काम में लगा देता,बिना ननु नच के वह उसमें जुट जाता।

सेठ दामोदरदासजी उन दिनों कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता थे, अब स्यात् वे प्रजासमाजवादी हैं। जब वे देहरादून के पास राजपुर में डा० सत्यदेवजी शास्त्री के चिकित्सालय में चिकित्सा करा रहे थे। उनकी दशा अत्यंत ही सोचनीय थी, कोई नहीं कहता था, कि उनका शरीर अब रहेगा। उन दिनों शास्त्री जी की अमेरिकन स्त्री उसकी एक बहिन तथा एक और अमेरिकन चित्रकार महिला उनकी रेख देख करती थी। उनकी सम्मति से और उस चित्रकार महिला के अनुरोध से हम उन्हें मसूरी ले गये। उन्हें शौच बहुत होते थे पैर जकड़ गये थे उठ बैठ नहीं सकते थे, उन्हें किसी अच्छे सेवक की बड़ी आवश्यकता थी। वे वहाँ अकेले थे। मैंने कहा—"मैं जाकर किसी आदमी को भेजूँगा। अनूपशहर लौटने पर मुझे गोविन्दजो का ध्यान आया, वह काशी विद्यापीठ में जब पढ़ता था, तब कुछ दिन उनसे पढ़ा भो था। मैंने उससे कहा—"तुम सेठजो को सेवा के लिये मसूरी जा सकते हो ?"

उसने कहा—"आप जहाँ भी भेजेंगे वहीं जा सकता हूँ।" मैंने उसे भेज दिया और वह तुरंत ही चला गया। लगभग ६ महीने वह उनकी सेवा में रहा; और भगवत् कृपा से जब वे पूर्ण

स्वस्थ हो गये तभी वह लौटा। सेठजी ने मुझसे उसकी सेवा की बड़ी प्रशंसा की। जिसने सेवा के मर्म को जान लिया उसके लिये सभी दिशायें सुखमय है। नीति शास्त्रकारों का कथन है, कि यह सम्पूर्ण पृथिवी सुवर्ण पुष्पों से लदी है, इसमें सर्वत्र सुवर्ण के पुष्प खिले हैं, इसीलिये इसका नाम वसुन्धरा है, परन्तु उन फूलों को सब चुन नहीं सकते। तीन प्रकार के ही लोग चुन सकते हैं। एक तो वे चुन सकते हैं जो शूरवीर हों, दूसरे वे जिन्होंने किसी भी विद्या का विधिवत् लगन से अभ्यास किया हो और तीसरे वे जो सेवा करना जानते हों * गोविन्दजी ऐसे ही सेवकों में थे तभी तो वे अपनी जन्मभूमि से इतनी दूर यहाँ अनूपशहर में इतने लोक प्रिय बन गये।

कुछ दिनों पश्चात् सुना वे परलोकवासी बन गये। पता चला वे सेठजी के ऊपर के कमरे में रहते थे, सरदी के दिन थे, कमरा छोटा था, उसमें खिड़की बंद करने पर कहीं भी वायु जाने का स्थान नहीं था। रात्रि में वह सब दरवाजे और खिड़कियों को बंद करके सोया। सोते समय कोयलों से भरी अँगीठी जलाकर उसने कमरे में रखली। कोयलों से जो गैस निकली उससे वह सदा के लिये चिरनिद्रा में सोगया, प्रातःकाल जब वह नहीं उठा तो लोगों ने किसी प्रकार किवाड़ खोलकर देखा। गोविन्द तो मिला नहीं, वहाँ उसमें मिला गोविन्द का मृतक शरीर। जिसे उसके मित्रों ने अग्नि में जला दिया।

२—देवना

उसका नाम दीवानसिंह था, प्यार से सभी उसे देवना कहा

---

* सुवर्णपुष्पितां पृथिवीं विचिन्वन्ति नरा स्त्रयः।
शूराश्च कृत विद्याश्च ये च जानन्ति सेवितुम्॥

करते थे। पूज्य श्री हरिबाबा ने जिस चामत्कारिक ढंग से जहाँ गंगाजीके बाँध का निर्माण किया था,जो हरिबाबा के बाँध के नाम से प्रसिद्ध है, मौलनपुर गाँव उस बाँध के किनारे ही था। मौलनपुर के पास ही श्री हरिबाबा की पक्की कुटिया, कीर्तन भवन, तथा और भी १०,२० पक्की कच्ची कुटियाँ थीं। कितने वहाँ उत्सव हुए, कितने दिनों तक वहाँ अखंड कीर्तन हुए, कितने बड़े बड़े विद्वानों के वहाँ प्रवचन हुए, कितनी रास मंडलियों और राम लीला मंडलियों की वहाँ लीलायें हुईं, इसकी कोई गणना नहीं। वे सब बातें स्वप्न हो गयीं। कसकने वाली, हृदय में गहरी टीस उत्पन्न करने वाली वे अतीतकी अनन्त स्मृतियाँ अवशेष मात्र हैं। उन दिनों ऐसा लगता था, भूपर वैकुंठ उतर आया है, आज न वह हरिबाबा जी की पीली कुटिया है, न वह विशाल संकीर्तन भवन है और न वह मौलनपुर ग्राम ही है, सभी गंगाजी की प्रबल धारा में बह कर विलीन हो गये। प्राणी गाँव के लिये, नामःके लिये, दाम के लिये सम्मान के लिये, कितना प्रबल प्रयत्न करता है, कहाँ गाँव है, कहाँ नाम है, कहाँ दाम है "संमीलिते नयनयो नहि किंचिदस्ति" एक प्रवाह में सब सफा।

हाँ, तो मैंने श्रीहरिबाबाजी की कुटी में रहकर "श्री श्री चैतन्य चरितावली" के लिखने का निश्चय किया। ६ महीने वहाँ रह कर चैतन्य चरितावली के पाँचों भाग वहीं समाप्त किये। नियमित कथा कीर्तन, सत्संग, महात्माओं का आगमन अबाधरूप से वहाँ चालू रहता था। सेवा के लिये लाला बाबूलालजी, रामेश्वरजी ने कई सेवक नियुक्त कर रखे थे। देवना उनमें से एक था। वह विशेषकर मेरी निजी सेवा में रहता था। वैसे तो इन्द्रजी आनन्द जी तथा और भी कई बन्धु साथ ही रहते थे। उस समय देवना की अवस्था रही होगी १०,११ वर्ष की, वह सीधा सादा अहर

जाति का अबोध बालक था, बाल्यकाल में उसकी माँ मर गयी थी, उसका पिता दूसरी स्त्री ले आया। वह घर से उपेक्षित था, उसे माता पिता का प्यार प्राप्त नहीं हुआ था। यह मानव प्राणी अनंत काल से प्रेम का प्यासा बना हुआ है। मानव क्या प्राणी मात्र प्रेम के लिये छटपटाते हैं। सिंह जो दूसरे जीवों को खालेता है,वह भी अपने बच्चों से,स्त्री से प्यार किये बिना रह नहीं सकता। चाहे भले ही भरपेट रोटी न मिले यदि किसी का प्रेम मिल जाय, तो प्राणी परम सुखी हो जाता है, इसके विपरीत चाहे खाने पीने का असंख्य वस्तुएँ क्यों न भरी हों भोजन, वस्त्र, महल, शैया, वाहन तथा अन्यान्य सुखोपभोग को कितनी ही वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में समुपस्थित क्यों न हों, यदि किसी का प्रेम प्राप्त नहीं है, कोई अपने से मीठा बोलने वाला नहीं है, कोई अपने को अपना कह कर पुकारने वाला नहीं है, तो वहाँ सबसे बड़ा दुख है, कारागार है नरक है। प्राणी प्रेम की खोज में ही देश विदेश भटकता फिरता है, इतने इतने पहाड़ों को नाँघता है, समुद्रों के अन्तराल से मोती निकाल लाता है, ये सब प्रेम प्राप्ति के ही प्रबल प्रयत्न हैं, प्राणी स्नेह का भूखा है, प्रेम का पिपासित है, अनुराग के लिये उतावला है, जहाँ इसे प्रेम मिलता है वहीं लुढ़क जाता है,उसी का बनकर रहना चाहता है,किन्तु इस स्वार्थ पूर्ण संसार में सच्चा प्रेम दुर्लभ है।

एक दिन गाँव के कुछ उपद्रवी लड़कों के साथ कहीं से वह कुछ अन्न चुरा लाया और उसके वे साथी लड़के गुड़ लाये या क्या हुआ अब घटना मुझे पूरी याद नहीं। मैंने उसे बहुत डाँटा। जब वह भोजनोपरान्त डरते डरते मेरे शरीर की मालिस करने आया तो मैंने उसे प्रेम से बहुत समझाया। वह रोने लगा और उस दिन से उसने प्रतिज्ञा की अब ऐसा कभी न करूँगा। और यथार्थ

में फिर कभी भी उसकी ऐसी कोई बात सुनने में नहीं आई।

मैं जब किसी विषय पर लिखता हूँ, तो तन्मय हो जाता हूँ सदा उसी भाव में भावित बना रहता हूँ, फिर मुझे शरीर की सुधि रहती नहीं। दूसरे लोग ही उसकी रेख देख रहते हैं, देवना-यन्त्र की तरह मेरे सब कामों को करता था, सेवा करते करते उसे इतना अनुभव हो गया था या मेरा भ्रम रहा होगा, कि उसे इस बात का पता चल जाता मेरे किस अङ्ग में विशेष पीड़ा है, उसे ही बार-बार दबाता वहीं मालिश करता। उसने कभी अपने काम में प्रमाद किया हो ऐसा स्मरण मुझे नहीं आता।

छै महीने में चैतन्यचरितावली के पाँचों भाग समाप्त हो गये ज्यों-ज्यों लिखता जाता था गीताप्रेस वाले उसे तुरन्त छापते जाते थे। पाँचवाँ खण्ड प्रेस को भेज दिया गया, अब अमुक तिथि को यहाँ से प्रस्थान करना है। उन दिनों पांढुरना के मास्टर नाहतकर अपने परिवार के सहित मेरे पास ठहरे थे, उन सबके साथ हमें हरिद्वार होकर सहस्रधारा जाना था और वहीं कुछ दिन गंधक के स्रोत के समीप विश्राम करने की बात थी। अब देवना को यह चटपटी लगी कि मैं किसी प्रकार महाराजजीके साथ ही चलूँ और सदा इनकी सन्निधि में ही रहूँ, किन्तु मेरे सम्मुख कुछ कहने का उसका साहस नहीं होता था। जब सब तैयारियाँ हो गयीं बिस्तर बँध गये, तो वह आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। मैंने प्यार से कहा—"देवना क्या बात है ?"

इतना सुनना था कि उसके धैर्य का बाँध टूट गया। वह फूट-फूट कर रोने लगा। मैंने उसके सिर पर हाथ रखा, पीठ थप थपाई और कहा—"अरे तू बड़ा पागललड़काहै रे। रोता क्यों है, बोल क्या बात है।" वह बोलना चाहता था, किन्तु उसकी वाणी अवरुद्ध थी। जब मैंने बार-बार पूछा, तनिक डाँटा भी, तब बड़े

कष्ट से उसने इतना ही कहा—"महाराज ! मैं भी आपके साथ हो चलूंगा।"

न जाने मैंने इस जीवन में कितने लोगों के हृदय को पीड़ा पहुँचायी है, साधु को और ऐसे साधु को जिसे दश लोग मानते हैं, बहुत ही फूंक-फूंक कर पैर रखने पड़ते हैं, उसे साथ ले जाने में मुझे कोई असुविधा नहीं थी। १०,२० आदमी साथ रहते ही थे, मुझे तो उसे साथ रखने में सब प्रकार की सुविधा ही मिलती। किन्तु एक तो यह भय कि लोग कहेंगे ये साधु गृहस्थियों के लड़कों को बहकाले जाते हैं, फिर दूसरे के बच्चे को मैं साथ कैसे रखूं। मैंने उससे मना कर दिया। वह बहुत रोया, किन्तु मैं नहीं पिघला, नहीं हो पिघला। वह कुछ मन मे निश्चय करके वहाँ से चला गया।

श्रीहरिबाबा जी के बाँध से बबराला स्टेशन ७,८ कोस है, कच्चा रास्ता है, बैलगाड़ी और हाथी के अतिरिक्त कोई अन्य सवारी नहीं। कुछ लोग हाथी पर चले कुछ बैल गाड़ियों से। ५,७ बैलगाड़ियों की टोली रात भर चलती रही। गाड़ी प्रातःकाल हारद्वार की ओर जाने वाली थी। एक बहली में मैं सो गया, प्रातः सब गाड़ियाँ बबराला पहुँच गयीं। गाड़ियो से सामान उतरा था, तभी हमने देखा एक गाड़ी के पीछे देवना छिपा हुआ है। मैंने जाकर उसे पकड़ा। वह रो रहा था, निरन्तर उसके आँसू बह रहे थे। पूछने से पता चला वह गाड़ियों की ओट में छिपते-छिपते रात्रिभर पैदल आया है। सच्ची बात यह है कि मैं भी कुछ पत्थर का तो बना नहीं था हृदय तो मेरा भी भरा था, किन्तु यह कर्तव्य पालन एक ऐसा पहाड़ है, कि मनुष्य को बहुत-सी बातें अपने हृदय के प्रतिकूल भी करनी पड़ती हैं।

मैंने उसे डाँटा और कहा—"तू पागलपन मत कर, ये

गाड़ियाँ गँवे को लौटेंगी, तू उनके साथ लौट जाना।" किन्तु मुझे ऐसा लगा उसके हृदय में इतना आघात हुआ था, कि वह विक्षिप्त जैसा बन गया। दूर जाकर खड़ा हो गया। मैं समझ गया, यह चलती गाड़ी में बलपूर्वक चढ़ना चाहता है। नाहतकर जी की बहिनें उसकी ऐसी दशा देखकर रो रही थीं मुझसे कह रही थीं—महाराज! लेते चलो बच्चे को बड़ा दुःख है।" किन्तु मुझे न जाने उसदिन कैसा भूत सवार हो गया, मैंने कहा—नहीं, इस प्रकार दूसरे के बच्चे को ले चलना उचित नहीं।

मैंने स्टेशनमास्टर से कह दिया—"एक लड़का बलपूर्वक रेल मे चढ़ना चाहता है इसे चढ़ने न दीजियेगा।" इससे उसने भी कई आदमी नियुक्त कर दिये' मैंने भी गाड़ी हांकने वालों को नियुक्त कर दिया। वह प्लेटफार्म से आगे दूर जाकर खड़ा हो गया। गाड़ी आई, इंजन उससे कुछ पीछे ही रुका हम सब चढ़ गये। इंजन के पास तक लोग खड़े थे, अतः वह आया नहीं। सीटी देकर गाड़ी जब चल दी, तो वह मुट्ठी बाँध कर गाड़ी के साथ-साथ भागा। भगवान् जाने उसमें इतना बल कहाँ से आ गया मीलों गाड़ी के साथ मुट्ठी बाँध कर भागता ही रहा। उस समय मेरे मन की स्थिति कैसी होगी पाठक इसका अनुमान नहीं कर सकते। मैं उसे गाड़ी पर चढ़ाऊँ तो कैसे चढ़ाऊँ, मना करता हूँ तो उसे सुनाई नहीं पड़ता, सुने भी तो उस समय वह अपने आपे में नहीं था। यह बात मुझे उस समय सूझी ही नहीं। कि गाड़ी की जंजीर खींचकर उसे खड़ी करके देवना को चढ़ा लेता। जहाँ तक वह भाग सका भागता रहा, अंत में अचेत होकर या कहीं ठोकर खाकर गिर पड़ा। इसके पश्चात् मुझे देवना देखने को नहीं मिला। इसके कुछ ही दिनों पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध की एक विचित्र घटना

मुझे श्री स्वामी कृष्णानंदजी बंबई वाले ने,सुनाई थी।

स्वामी कृष्णानंदजी भी कभी-कभी बाँध पर ठहरते हैं, मोलनपुर के अहर उनकी सेवा सुश्रूषा करते हैं। देवना तो जो भी साधु वहाँ आता उसकी ही सेवा करता था। वह भी स्वामी जी के पास नित्य आया करता था। दो तीन दिन नहीं आया तो इन्होंने पुछवाया पता चला उसे ज्वर आता है, ये देख भी आये कोई विशेष ज्वर नहीं था। स्वामी जी कहते थे—रात्रि में मैंने स्वप्न देखा कि देवना के तो चार हाथ हो गये हैं, वह किरीट-मुकुट लगाये देवता बना आकाश में जा रहा है। स्वामी ने पूछा—"अरे देवना ! तू कैसा बन गया, तेरे ये चार हाथ कैसे हुए ?"

उसने कहा—"अब हम स्वामी जी ! जा रहे हैं। श्री महाराज ( श्री हरि बाबा जी ) ने हमें वैकुंठ भेज दिया है।" इतने में ही स्वामीजी की आँखें खुल गयीं। वे तुरंत उठकर दौड़कर मोलनपुर आये। वहाँ देखा देवना का मृतक शरीर पड़ा है, उसके घर वाले उसे चारों ओर से घेर कर रुदन कर रहे हैं।"

३—माता दीन

उन दिनों मैं हंसतीर्थ की वटतर की कुटिया में रहता था। अकेला ही मातादीन मेरी सेवा में रहता था १३,१४ वर्ष का वह रहा होगा। जाति का अहीर था, बड़ा ही सौम्य सरल सदाचारी तथा सेवापरायणथा। निरन्तरसेवा में लगेरहना यही उसकाव्यापार था, वह बहुत ही कम बोलता था और बहुत ही कम आराम भी करता था। मुझे कभी-कभी सनक सवार होती थी। जैसे किसी को मृगी का रोग होता है, वैसे ही अब तो प्रायः वह समाप्त-सा ही हो गया है, पहिले मुझे वैराग्य का रोग था। जो कुछ पास हो उसे सबको बाँट बूट कर या छोड़कर चल देना। साथियों को छोड़कर भाग जाना। ऐसा प्रायः हो जाता था।

उन दिनों और अब भी अहीरों के बच्चों का बहुत ही छोटी अवस्था में विवाह कर दिया जाता है। उसका भी विवाह हो गया था, किन्तु वह कभी घर जाता ही नहीं था। जैसे तैसे उसे घर भेजते तुरंत लौट आता। उसके घर वालों ने मुझसे कई बार शिकायत की यह घर जाता नहीं। कुछ तो इस कारण से कुछ वैराग्य की झोंक में मैंने उससे कह दिया—"अब मैं सभी काम अपने स्वतः ही किया करूँगा,तुम अपने घर जाओ।"

वह जाना नहीं चाहता था, किन्तु मैंने उसे ठेल ठाल कर घर भेज दिया। घर में उसका मन कब लगने वाला था। एक दिन जन्माष्टमी के दिन वह मेरे पास आया और बड़ी ही दीनता से बोला—"महाराज, आज जन्माष्टमी है, आज के दिन कैदी भी छोड़े जाते हैं, लोगों को इनाम भी मिलता है, मेरी यही भीख है, कि मुझे सेवा में रख लीजिये।"

तब तक मेरा वैराग्य का ज्वर उतरा नहीं था, मैंने कहा—"मुझे अब किसी को रखना ही नहीं है।"

यह सुनकर वह अत्यंत ही उदास मन से चला गया। कुछ ही दिन पश्चात् उसका भाई रोता हुआ मेरे पास आया और उसने कहा—"माता दीन तो मर गया। जब से यहाँ से लौटा था, एकान्त में उदास रहता था।" मुझे बड़ा दुःख हुआ, मुझे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी, इसका ऐसा परिणाम होगा। वैसे तो उसका समय ही आगया था, किन्तु मेरे मन में एक टीस रह गयी' यदि वह यहाँ रहता तो स्यात् न मरता।

४—मातादीन का भतीजा।

अब उसका नाम तो याद रहा नहीं। वह भी लगभग मातादीन के ही बराबर था। मातादीन के मरने पर उसका भाई उसे मेरे पास रख गया था, वह भी बड़ी लगन से सेवा करता था, हंस

तीर्थ के सन्ध्यावट के नीचे जहाँ मैं रहता था, उस स्थान के महन्त जी को यह सन्देह हो गया, कि संभव है,ये इस स्थान पर अपना अधिकार न जमालें। इनका इतना भारी प्रभाव हो गया है। अतः वे भीतर ही भीतर लोगों से मिलकर मुझे वहाँ से भगाने का प्रयत्न करने लगे। मेरे विरुद्ध एक न्यायालय में अभियोग भी आरम्भ कर दिया। कहानी बहुत बड़ी है,और बहुत रोचक भी है, किन्तु उसे छोड़ ही देता हूँ,अभियोग का निर्णय हमारे पक्ष में ही हुआ, किन्तु मुझे इससे बड़ी आत्मग्लानि हुई। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया—"कुंभ का मेला जिस दिन समाप्त होगा, उसी दिन इस स्थान को छोड़कर चल दूँगा।" कुंभ के अवसर पर वहीं सन्ध्यावट के आस पास डेढ़ या दो महीने के अखंड कीर्तन का अयोजन था, उसकी बहुत बड़ी तैयारियाँ की गयीं। नैपाल, काशी तथा और दूर दूर से कीर्तनकार बुलाये गये। मीलों के बीच में विस्तार था, सैकड़ों फूंस की कुटिया बन गयीं। एक बड़ा भारी इस पार भूसी में अभिनव नगर ही बस गया। प्रान्त प्रान्त के लोगों को ठहरने का पृथक् पृथक् प्रबन्ध था, कुंभ का मेला स्यात् फाल्गुन की अमावास्या को समाप्त होना था, उस दिन बड़ा भारी प्रीतिभोज हुआ। आज ही मेरा यहाँ से भागने का निश्चय था किन्तु मैंने किसी से भी भूल में भी इसकी चर्चा नहीं की। मैं जानता था जहाँ चार कानों में बात गयी ,कि फिर फैलते देर नहीं लगती। अपनी चेष्टा से भी मैंने ऐसी कोई बात प्रकट न होने दी। रात्रि के बारह बजे तक सब को भोजन कराता रहा। १२ बजे मैंने स्वयं प्रसाद पाया। चुपके से भगवान् को एक वस्त्र में लपेटा, सिंहासन पर फूल रख कर पर्दा डाल दिया। १०,५ आदमियों को साथ लेकर मैंने कहा—आज त्रिवेणीजी का विशेष पर्व है, चलें स्नान करनेके लिये। परमानंद,श्यामसुंदरजी उपाध्याय,कुंवर कायम

सिंह, आनंदजी, भगवन्, रामजी और कौन था मुझे याद नहीं नौका पर बैठ कर चले। एक नौका खाली साथ भी लेली। लोगों ने पूछा—"खाली नौका किस लिये ? मैंने कुछ इधर उधर की बात कह कर टाल दी। रात्रि में त्रिवेणी ,स्नान हुआ फिर अन्य सब लोगों को तो दूसरी नौका पर बैठा दिया और सबसे कह दिया कोई किसी को बतावे नहीं। मैं और भगवन् एक नौका पर बैठ कर गंगासागर के संकल्प से नौका में बैठ कर चल दिये।

इधर हमने ज्योंही कुटी को छोड़ा सुनते हैं उसके घड़ी भर पश्चात् ही एक राक्षस निकला। मानों वह राक्षस घात में ही बैठा हुआ हो और मेरे जाने की प्रतिक्षा ही कर रहा हो। वह राक्षस सियार के रूप में आया और उसने लोगों को काटना आरम्भ कर दिया, सबसे पहिले मातादीन का भतीजा था उसी को उसने काटा, फिर उसके सामने जो भी आया उसीको उसने काटा, सम्पूर्ण संकीर्तनधाम में भगदड़ मच गयी। मैंने तो यह दृश्य देखा नहीं किन्तु सबसे सुना अवश्य कि लोग लट्ठ ले लेकर उसे मारते किन्तु वह उछल उछल कर लोगों की नाकों को ही नोंच लेता। इस पर ५,७ आदमियो को उसने घायल किया। तभी तो मैं कहता हूँ वह कोई राक्षस ही था, सियार चाहे जितना भी पागल हो गया हो उसमें इतना साहस नहीं होता। अकेले दुकेले आदमी को पाकर काट सकता है। पूरे धाम के लोग जाग पड़े सब इकट्ठे हुए उसपर डंडों की मार पड़ी, अंत में बहुत से लोगों ने उसे मिलकर मार डाला। वहाँ कई सौ नर नारी थे, परन्तु यह किसी को भी नहीं सूझी कि चलकर ब्रह्मचारीजी को जगावें। यदि उस समय कोई मेरी खोज करता तो पलायंन का भंडा फोड़ तुरंत हो जाता। सियार कांड समाप्त होनेपर सब सोगये। प्रातःकाल जब बहुत दिन चढ़ गया और 'हेनाथ नारायण वासुदेव,की. ध्वनि सुनायी न पड़ी

तो लोगोंने पूछ ताछ की। हीरालाल ने बताया रातमें लौटे ही नहीं सिंहासन देखा गया, वहाँ भगवान् ही नहीं मैंने तो देखा नहीं सुना कि फिर जो रुदनकांड आरम्भ हुआ वह अभूतपूर्व था। कोई नर नारी ऐसा नहीं था जो ढाह मारकर रुदन न कर रहा हो। सब लोग अपने अपने बिस्तरे बांधकर चल दिये। प्रबन्ध करने वालों सबको सूचित कर दिया—"आज ही सब चले जायँ, रात्रि को सुरक्षाका भार अब हम पर नहीं।" एक ही दिनमें सहस्रों मनुष्यों की चहलपहल वाला संकीर्तन धाम जन शून्य बन गया। कई सौ फूंसकी कुटियाँ सूनी हो गयीं। फिर हुआ अग्नि कांड। किसी ने उन कुटियों में आग लगा दी। आकाश व्यापी होली जली।

सियार असुर ने जिन लोगों को काटा था उनमें से कई तो अस्पताल में जाकर मर गये। मातादीन का भतीजा घर पर जाकर मर गया। सेवक की सेवा का यह प्रतिफल सुनकर मुझे अपने दुर्भाग्य पर दुःख हुआ।

## ५—रामकृष्ण मूर्ति।

वह आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले का था। आन्ध्र के प्रसिद्ध महात्मा दासशेषजी का एक मात्र पुत्र था। दो महीने के लगभग यात्रा में मेरे पास था। फिर सदा के लिये मेरी सेवा में रहने को वह प्रयाग आ गया था। कुछ दिन पश्चात् मेरे देखते देखते त्रिवेणी में डूबकर विलीन हो गया, बहुत खोजने पर उसका शव भी नहीं मिला, एक बार जो डूबा फिर उछला ही नहीं। उसके ऊपर मैंने "शोक शान्ति" नामक एक छोटी सी पुस्तिका लिखी है, जो झूसी संकीर्तनभवन से प्रकाशित हुई है, पाँच आने में मिलती है।

## ६—ठाकुर

उसका नाम क्या था, किसी को पता नहीं। प्रयाग के पास

ही किसी गाँव का वह रहने वाला था। एक लंगोटी लगा कर वह पागलों की भाँति संकीर्तन भवन में आया था। कुछ ही दिन में उसने मेरे यहाँ की सभी सेवा का भार सम्हाल लिया। वह निरन्तर मौन रहता था, केवल मुझसे ही बातें करता था। उस समय प्रेस में, भंडारे में और भी कई ठाकुर थे अतः सब उसे मौनी ठाकुर कहते थे। दो उसे काम थे एक तो मेरे यहाँ की सेवा करना, दूसरे भागवती कथा भागवत चरित का स्वाध्याय करना। प्रायः सम्पूर्ण भागवत चरित उसे कंठस्थ था, झाड़ू देते हुए, भगवान् के पार्षद मलते हुए, मंदिर धोते हुए, पानी खींचते हुए तथा अन्यान्य सभी काम करते हुए वह निरन्तर भागवत चरित का पाठ करता रहता। जब मैं किसी से कहता–"इसने पूरा भागवत चरित कंठस्थ कर लिया है, तुम इससे कहीं से पूछो।" तो जो भी जहाँ से पूछता उसका पाठ करने लगता। उसकी लय इतनी सुन्दर और आकर्षक थी, कि सुनने वाला मंत्रमुग्ध की भाँति सुनता ही रहता। वह गाते गाते तन्मय हो जाता, उसी विषय में खो जाता, इसे शरीर की सुधि नहीं रहती। जो भी उसे देखता वही कहता–यह कोई योगभ्रष्ट योगी है। वास्तव में उसकी समस्त चेष्टायें "एक वीतराग ; स्थितप्रज्ञ की सी थीं। आश्रम में कुछ भी होता रहे, कोई किसी से कुछ भी कहता रहे, उसे किसी से कुछ प्रयोजन ही नहीं था। एक अबोध बालक की भाँति मुझसे आकर पूछता—"महाराज ! मैं अमुक कार्य करलूँ ?"

एक लँगोटी लगाये प्रातःकाल से रात्रि के १०। ११ बजे तक जब तक मैं सो न जाऊँ, वह निरन्तर काम में जुटा ही रहता। तब तक भागवती कथा के स्यात् ५६ या और अधिक भाग छप चुके थे। उसने कितनी बार सब का पारायण किया होगा, इसकी गणना नहीं। सैकड़ों ही बार किया होगा। मुझे तो याद भी नहीं

कौन-सी कथा किस खंड में है, उसे अक्षर अक्षर स्मरण था। कहीं की कथा पूछ लो, कहीं का प्रकरण पूछ लो, तुरन्त बता देगा। मेरे लिये तो वह सजीव बोलता चालता सचल भागवतीकथा का कोप था, कोई प्रसंग मुझे खोजना होता उसी से पूछ लेता,वह तुरन्त बता देता। उसका जीवन संयमित था। कार्यक्रम बँधा हुआ था। उसकी आँखें सदा चढ़ी ही रहतीं। ऐसी आँखें बहुत कम-सदस्रों लाखों मनुष्यों में से किसी की स्यात् ही मिलें। वह सदा सर्वदा निजानंद में डूबा रहता।

न जाने किस बात पर उसका किसी से मत भेद हो गया। मुझे बात ठीक-ठीक याद नहीं। वह अकेला मेरे रहनेकी कुटियामें रहता था, मैं उन दिनों गोव्रत में दीक्षित होने के कारण गोशाला की एक कची कुटिया में रहता था। मैंने सुना वह कहीं चला गया है। तीन चार दिन वह त्रिवेणी पार अरैल में किसी शून्य स्थान में रहा। किसी ने चने दे दिये उन्हें ही खाकर तीन चार दिन रहा। फिर लौट कर मेरे पास आ गया। मतभेद स्यात् कुछ भोजन के सम्बन्ध का था, वह अपना भोजन पहिले तो भंडार से ही लाता, फिर स्वतंत्र कुटिया में बनवाने लगा, फिर मेरे परोक्ष में कुछ हुआ होगा। मेरे पास आकर वह बहुत रोने लगा। मैंने कहा—तुम जैसे पहिले भंडार से भोजन लाते थे वैसे लाया करो या किसी से मँगा लिया करो। मेरी तो वह प्रत्येक बात स्वीकार करता था। कुछ दिन रहा फिर मुझसे बोला—"अब मुझे यहाँ रहने में संकोच-सा प्रतीत होने लगा है, मुझे वृन्दावन जाने की आज्ञा दें।"

मैंने कहा—"अच्छी बात है चले जाओ।" तब वह स्यात् पैदल ही पैदल यमुना जी के किनारे किनारे श्री वृन्दावन पहुँचा। पूरे मार्ग पैदल गया या कहीं से गाड़ी में बैठ गया

इसका मुझे पता नहीं। वहाँ जाकर वह श्री स्वामी चक्रपाणिजी महाराज के समीप रहने लगा। स्वामीजी यहाँ सदासर्वदा रहते हैं, उनसे उसका परिचय ही था। वहाँ एक बार जो भी रूखी सूखी मिल जाय, उसे पाकर शेष समय में भागवती कथा पढ़ता रहता भागवतचरित का पाठ करता रहता। एक पल भी न वह व्यर्थ बैठता न कहीं दर्शन करने ही जाता। स्वाध्याय समाधि में ही मग्न रहता।

जब मैं श्री वृन्दावन गया तो मेरे साथ ही रहा, फिर साथ ही साथ आश्रम में आ गया। कुछ दिन आश्रम रहा। फिर मुझसे बोला—"अब मुझे यहाँ रहने में संकोच होता है, आज्ञा हो तो मैं बाहर घूमूँ।"

मैंने कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

वह अपनी पुस्तकों का गट्ठर बना कर चला गया। प्रतीत होता है, यहाँ से वह अपने घर को गया। घर पर उसकी माँ और एक छोटी बहिन थी। बहिन का विवाह हो चुका था। माँ के पास ही रहने लगा। वहाँ भी वह मौन ही रहता और निरन्तर स्वाध्याय में डूबा रहता। किसी से बोलना नहीं, चालना नहीं। समय पर माँ जो बना कर दे देती, एक बार उसे ही खाकर फिर पढ़ने में लग जाता। डेढ़ या दो वर्ष वह अपनी माँ के समीप रहा।

एक दिन उसकी माँ रोते-रोते आई और बोली, कि आपका बचा तो चला गया।"

मैंने पूछा—"कहाँ चला गया ?"

उसने ऊपर उँगली उठाकर कहा—रामजी के पास। उसकी माँ ने बताया कि उसने पहले ही कह दिया था अब चोला छोड़ेंगे। और स्नान किया लेट गया, लेटा का लेटा ही रह

गया।" उसकी माँ ने उसके सम्बन्ध की बहुत-सी वातें बताई जब तक वह रही उसी के सम्बन्ध की चर्चा करती रही। उन सब बातों को लिखकर बात का विस्तार क्यों बढ़ाना। तभी मुझे 'सेवक संस्मरण' लिखने की प्रेरणा मिली, औरों के संस्मरणों को पाठक पाठिकायें भूमिका समझे ठाकुर का संस्मरण ही लेख का उद्देश्य था; वह लिख कर लेख समाप्त हो गया।

उप संहार

"सेवक संस्मरण" तो समाप्त हुआ, किन्तु उपसंहार में दो महानुभावों का स्मरण कर लेना अत्यावश्यक है, यद्यपि उन की गणना मैं सेवकों में नहीं करता। वे लोग विद्य में, बुद्धि में, वय में, पद प्रतिष्ठा में तथा अन्य सभी बातों में मुझ से बड़े थे, मैं पितृवत उन का आदर करता था, उन से कोई शारीरिक सेवा तो ले ही नहीं सकता था, फिर भी सेवा तो वे करते ही थे और सच्चे हृदय से करते थे, स्वयं वे अपने को सेवक ही मानते थे, अतः इस प्रकरण में उन के स्मरण के लोभ को मैं संवरण नहीं कर सका। वे दो हैं श्री रामदयालु बाबू और हिम्मत सिंह जी महेश्वरी

श्री रामदयालु बाबू

बिहार प्रान्तीय धारा सभा के वे अध्यक्ष ( स्पीकर ) थे, जन्म स्थान उनका मुजफ्फरपुर जिले में था। वहाँ के प्रसिद्ध वकील थे जिलाबोर्ड के सभापति रहे, राजनीति में सक्रिय कार्य करने से बिहार के सर्ववरिष्ट नेता बन गये। उनसे प्रधान मंत्री बनने को भी कहा गया, किन्तु बहुत आग्रह पर उन्होंने धारा सभा का अध्यक्ष होना ही स्वीकार किया। वे वैष्णवी दीक्षा में दीक्षित थे अयोध्या जी से उनका सम्बन्ध था, अपने यहाँ सदा श्री सीताराम का कीर्तन कराते रहते। उन्हें जो अर्दली तथा अन्य सरकारी नौकर मिले थे उनका काम यही था, वे झाँझ ढोलक पर सदा

कीर्तन करते रहें। वे कहते थे—"जब तक कानोंमें रामहल्ला न पड़े तब तक मुझे कुछ अच्छा ही नहीं लगता, कुछ काम ही नहीं कर सकता।" बाहर भी जाते तो भी उनका यह क्रम ज्योंकात्यों रहता। एक दिन भारतके सभी प्रान्त के स्पीकरों की शिमला या मंसूरी में एक सभा हुई, उसमें से लौटते हुए वे मेरे पास आये, उन्हें कुछ शारीरिक कष्ट था। बातों ही बातों में मैंने कहा-"आप यहाँ रहें तो अच्छा है। उन्होंने कहा—"जैसी सरकारकी आज्ञा।" यहाँ का उन दिनों का अंगरेज राज्यपाल उनका परिचित था, बिहार में वह रह चुका था, प्रधान मंत्री, मंत्री सभी उनके सहयोगी मित्र थे, उसी दिन उन्होंने भूमि के लिये प्रार्थना पत्र भेजा। स्वीकार होने में तो देरी ही क्या थी। जिस कुटीमें आज कल मैं रहता हूँ पहिले उसी को उन्होंने अपने निवास के लिये बनाया था। जहाँ आज कल कथा मंडप डाकखाना तथा औषधालय हैं,वहाँ उनके अर्दली आदि रहते थे। कुटी की प्रत्येक ईंट सीताराम सीताराम बोलते हुए रखी गयी। एक आदमी की नियुक्ति थी वह राज नौकरों से सीताराम कहलाता रहे, स्वयं सीताराम कहे। फिर वे सपरिवार— आकर भूसी में बस गये। इतने बड़े आदमी होने पर एक अबोध सेवक की भाँति वे मेरे छोटे से छोटे काम को करने को सदा उद्यत रहते और करते भी थे, उन दिनों कांग्रेसी मंत्रि मंडलों ने त्याग पत्र दे दिया था, किन्तु धारासभा का अध्यक्ष तो दलबन्दी से ऊँचा समझा जाता था, अतः वैधानिक रीति से उसके त्याग पत्र का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। अध्यक्ष का जो भी कार्य होता वे यहीं से बैठे बैठे करते। वे एक परम आस्तिक सात्विक स्वभाव के

भगवत् भक्त थे। उनके सम्बन्ध की बहुत बातें हैं वर्षों साथ रहे हमारे सभी उत्सवों में उनका सब प्रकार से सहयोग रहा। चिकित्सा सम्बन्धी सम्मति देने के कारण मेरा अत्यंत घनिष्ट उनसे सम्बन्ध रहा। जब मेरा सन्ध्यावट से पलापन कांड हुआ और मैं रात्रि में चुपके से चला गया। तब उन्हें तथा सभी को यह विश्वास हो गया कि अब मैं लौट कर झूसी नहीं आऊँगा, और तीन वर्ष तक मैं इधर उधर घूमता ही रहा। तब वे भी अपना झोली डंडा उठा कर झूसी से सदा के लिये चले गये। मदरास में मुझे समाचारपत्रों द्वारा पता चला वे तो इह लौकिक लीला समाप्त करके पर लोकवासी बन गये,उनकी स्मृति तो यहाँ के कण कण में निहित है, दैव की लीला तो देखिये जो कुटी उन्होंने बड़े उत्साह से अपने लिये बनवाई थी, आज उसमें यह भागवती कथा लिखी जा रही है,

श्री हिम्मतसिंहजी माहेश्वरी।

महेश्वरी जी कुल से विद्या से समाज में बड़े सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। उनके पाँच पुत्र हैं और पाँच ही पुत्री। एक पुत्री तो सेठ गोविन्द दास जी के पुत्र से विवाही हैं जो मध्य प्रदेश में उपमंत्री हैं। बड़ा लड़का सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला की लड़की से विवाहा है,इसी प्रकार उनका सम्बन्ध भारतवर्ष के प्रायः समस्त सम्मानित महेश्वरी वैश्यों में था। उन्होंने डिप्टी कलेक्टरी से बढ़ते बढ़ते उपराज्यपाल (चीफ कमिश्नर ) तक का पद प्राप्त किया था। वे बड़े से बड़े उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर

रहे, किन्तु अपने कार्य में कभी प्रमाद नहीं किया। वे उत्तर प्रदे-शीय 'अयोग्य अप्राप्तवयस्क भूप संरक्षक संघ'(कोर्ट आफ वार्ड्स) के बहुत दिन तक अध्यक्ष रहे। वह ऐसा पद था कि चाहते तो बड़ी सरलता से लाखों रुपये एकत्रित कर सकते थे, किन्तु उन्होंने कभी किसी प्रकार की उत्कोच ( घूँस ) नहीं ली। वे बड़े आवेग में कहा करते थे—"महाराज ! मैंने कभी बेईमानी नहीं की, रिश्वत नहीं ली, मैं किसी से क्यों डरूँ ? वास्तव में वे बड़े ही निर्भीक थे जोधपुर, जयपुर, कश्मीर और भी कई राज्यों में वे मंत्री रहे बंगाल के एक राज्य के प्रधान मंत्री भी रहे और अंत में मणिपुर राज्य के प्रधानशासक उपराज्यपाल ( चीफ कमिश्नर ) बनाये गये। वहाँ जब तक रहे तब तक उन्होंने बड़ी योग्यता और वीरता से शासन किया। ब्रह्मा रंगून की मणिपुर की सीमा मिली रहने से गड़ बड़ी की संभवना रहती है, नागाओं का भी उपद्रव होता रहता है अब भी चल रहा है। अपने शासनकाल में ये सब को शांत करते रहे। अंत में ये उसे भी छोड़ कर चले आये और प्रयाग में जहाँ उन्होंने पहिले ही अपना केसर भवन स्थान बना लिया था उसी में रहने लगे। पुराना घर उनका काशी में था। वे बड़े स्पष्ट वक्ता थे, बहुत ही खरी बात कह देते थे, उनमें सभी गुण ही गुण थे। एक ही बात खटकने वाली थी, कि वे बिना गाली के बात नहीं करते थे। गाली मानों उनकी टेक थी जीवन भर शासन करने से यह उनका स्वभाव पड़ गया था, वैसे बड़ी शिष्टता सभ्यता से बातें करते थे। साधु महत्माओं ब्राह्मणों

का बड़ा आदर करते। भगवान् की कथा सुनते सुनते उनकी आखों में टप टप आँसू गिरने लगते। नित्य नियम से कथा सुनते, जो काम करते मर्यादा के साथ करते, जिसे जो वचन दे देते उसका यथा शक्ति पालन करते। जीवन में उन्होंने धन कभी इकट्ठा किया ही नहीं, उसकी वे आवश्यकता भी नहीं समझते थे। उन्हें पर्याप्त सेवान्त पारिश्रमिक ( पेंसिन ) मिलती थी। बड़े बच्चे अपना कारबार करते हैं,वर्तमान शासन की धर्म हीनतासे वे बहुत अधिक चिढ़ते थे। धर्म निरपेक्ष ( सेक्यूलर ) शब्द से तो वे भड़क उठते। हिन्दुकोडबिल के तो वे परम शत्रु थे, कांग्रेसियों को तो ऐसी खरी खोटी सुनाते कि हँसते हँसते पेट फूलने लगता था, स्वयं इतने गंभीर बने रहते कि किसी का उनके सामने कुछ कहने का साहस नहीं पड़ता। सत्य बात को वे बिनाकिसी हिचक के कह देते। मुझ से तो बड़ा ही स्नेह रखते, मैं भी उनका बड़ा आदर करता। सभी जानते हैं, मैं अपने जीवन में कभी न चुनाव के चक्कर में पड़ा, न कभी सभा समिति का सदस्य ही बना। आरंभ से ही मुझे इन वर्तमान सभा समिति और न्यास आदि की बनावटी बातों से तथा दिखावटी नियम उपनियमों से बड़ी घृणा रही है। यह बात सर्व सम्मत है,कि साधुओंको इन संसारी चुनाव, राजनैनिक झंझटों में न पड़ना चाहिये, विवशता की बात दूसरी है। कौन पुरुष चाहता है हम शौचालय में बैठे रहें। किन्तु जो अर्श से विवश हो जाते हैं, उन्हें इच्छा न रहने पर भी घंटों शौचालय में बैठना पड़ता है।

गण तन्त्र के सर्वप्रथम चुनाव में यदि महेश्वरी जी अत्यधिक आग्रह न करते, तो मैं स्यात् कभी खड़ा न होता। उन्होंने इतना आग्रह किया कि मैं उनकी बात को टाल न सका, मेरे भी मन में छिपी वासना थी ही। यद्यपि उनके पास विशेष द्रव्य नहीं था, किन्तु जो था उन्होंने अपना सर्वस्व लगा दिया, चुनाव का अधिक व्यय भार उन्होंने अपने पास से ही वहन किया। उनके पास एक मोटर थी। अपनी धर्मपत्नी को साथ लेकर वे रात दिनों गांवों में घूमते रहे। कोई अपने लड़का लड़की के विवाह में भी इतनी तन्मयता नहीं दिखावेगा जैसी तन्मयता से उन्होंने उन दिनों काम ,किया था। मुझे तो कोई चिन्ता ही नहीं थी। हारने जीतने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। खेल था, मेरा तो विनोद था, किन्तु बाबू जी बड़ी लगन से काम करते थे। चुनाव के परिणाम से उन्हें सन्तोष ही रहा।

उस दिन इसी फागुन में मणिपुर की महारानी आई थीं। मैंने उन्हें बुलाया था, सपत्नीक वे यहाँ आये। बड़े प्रेम से बातें करते रहे। मेरी उनसे यह अंतिम भेंट थी। कह तो वे पहले से ही रहे थे, कि अब बहुत दिन जीना नहीं है, चला चली का डेरा है, किन्तु हमें विश्वास नहीं था। बूढ़े आदमी ऐसे कहते ही रहते हैं। श्री बद्रीनाथ आदि की तो वे सब यात्रा कर आये थे। पिछले साल कहा—दक्षिण की यात्रा रह गयी है उसे कर आऊँ। वे पं० हनुमत् दयाल जी को लेकर सपत्नीक दक्षिण की यात्रा में गये और वहाँ के सभी प्रसिद्ध तीर्थों के दर्शन किये। उस

दिन आये थे कह रहे थे—"अयोध्या और काशी मुझे और जाना है।" अब के चुनाव में रज्जू भैया ने उनसे कहा—"भाई साहब ! आप खड़े हो जाइय।" वे बोले—"अरे, भाई ! अब कितना जीना है, तुम्हें शीघ्र ही उपचुनाव कराना पड़ेगा। मैं अब पाँच वर्ष किसी प्रकार नहीं जी सकता।" ऐसा लगता था मानों उन्हें सब पता था, अभी उस दिन वैशाख में ही वे काशी गये। वहाँ उनका पुराना घर बगीचा था, उसी के सम्बन्ध में सपत्नीक गये थे। न वहाँ कोई लड़का था न लड़की, न सगा न सम्बन्धी। अपने बगीचे वाले घर में गीता पढ़ रहे थे। फिर बोले—आज मेरे कुछ थोड़ा दर्द होता है, भूख भी लग रही है।"

उनकी पत्नी ने कहा—"लाओ, कुछ बना दूँ।"

आप बोले—"नहीं, तुम मत बनाओ, महाराज बना लेंगे तुम तो मुझे गीता सुनाओ।"

वे बैठकर गीता सुनाने लगीं, गीता सुनते सुनते ही 'हरये नमः' उनकी पत्नी ने जब देखा कुछ बोलते नहीं, तो शरीर को टटोला। तब तक तो पंछी पींजड़ा छोड़कर उड़ गया था, केवल निर्जीव पींजड़ा ही अवशेष था।

मैंने कहा—"बाबूजी ! आप एक गौ अवश्य लेलें। उन्होंने कहा—"चहता तो मैं भी हूँ किन्तु कोई अच्छी मिलती नहीं तलाश कर रहा हूँ।" खोजते खोजते उन्हें एक हरियाने की सुन्दर गौ मिली। उसे लाकर रखा स्वयं उसकी देख देख सेवा करते थे। नाम उसका रखा कामधेनु, अपनी धर्मपत्नी से कहा—देखो, यदि पहिले तुम मर गयीं तो इस गौ को मैं आश्रम में भेज दूँगा और मैं मर जाऊँ तो तुम इसे आश्रम में भेज देना।" उनके

परलोक गमन के अनंतर उनकी धर्मपत्नी ने कामधेनु को आश्रम में भेज दिया है, मैं उसे गौशाला से पृथक् अपनी कुटी में ही रखता हूँ, वह गौ उनकी स्मृति को नूतन बनाये रखती है।

ये मेरे कोई सम्पूर्ण संस्मरण नहीं हैं, लिखते समय जो याद आगये उनका स्मरण कर लिया। इस छोटे से जीवन में बहुतों से परिचय हुआ। बहुत लोग संसर्ग मे आये। बहुत चल बसे, जो बचे हैं उनको भी एक दिन उसी मार्ग में जाना है, और ये लोह की काली लेखनी लिये, दाढ़ी बाल बढ़ाये, सफेद कागदों को काले करने वाले श्री ब्रह्मचारी जी महाराज भी उसी मार्ग को जायँगे। जब सब का जाना निश्चित ही है, जब सभी उसी पथ के पथिक हैं, तब किन किन की याद करें ? किन किन के संस्मरण लिखें ? किन किनके लिये रोवें ? किन किनके लिये आँसू बहावें ? किसी कवि ने कैसी हृदय को लगने वाली सत्य बात कही है।

नदी नाव का पैठनों, पलक एक की प्रीति।<br>
पल में पिछड़े जात हैं, यही जगत की रीति ॥<br>
हम देखे जग जात है, जग देखे हम जायँ।<br>
हम तो बैठे राह पै, किस किस कूँ पछितायँ ॥

बस, तो अब तो बड़ी भूमिका हो गई, अब भगवान् की स्तुतियों को पढ़िये, सुनिये और श्रद्धा भक्ति के साथ उन्हें मनन कीजिये। मरना जीना तो लगा ही रहता है, जो जन्मा है वह मरेगा। जो मरा है वह जनमेगा, उसका सोच भी करें तो लाभ क्या ? चिन्ता ही करें तो हाथ क्या लगेगा ? दुःख ही करें तो इससे मिलने मिलाने का तो कुछ है नहीं, इन संस्मरणों को पढ़कर अपने भी चलने की तैयारी में जुट जाओ। बोरिया

विस्तरा बाँधकर तैयार हो जाओ, उस काल सर्प के कवल बनने को उद्यत हो जाओ। यह काल रूपी सर्प किसी न किसी दिन सब को डस लेगा, इसकी पकड़ से कोई छूट नहीं सकता, इसके लिये कोई मंत्र नहीं, तन्त्र नहीं, झाड़ नहीं, फूँक नहीं, जादू नहीं टुटका नहीं, जड़ी नहीं, बूटी नहीं। डसेगा तो सभी को, हाँ इसका विष व्याप्त न हो इसकी एक ओषधि अवश्य है। ओषधि भी दस बीस नहीं। एकमात्र ओषधि है और परीक्षा की हुई, कभी असफल न होने वाली रामबाण ओषधि है। वह क्या ओषधि है ? यही कि सर्वावस्था में सभी समय हरि भगवान् का चिन्तन करते रहो। उनकी प्रार्थना स्तुति में लगे रहो।

संसार सर्पदष्टानामेकमेव सुभेषजम्।
सर्वावस्थासु सर्वत्र सर्वदा हरिचिन्तनम्॥

### छप्पय

काल सरप अति बली डसै सबई जीवनिकूँ।
पशु पच्छी तरु लता तजै नहिं नर नारिनि कूँ॥
मूरख पंडित बली दीन राजा अरु रानी।
बिवश होय मुख घुसैं चलेगी नहिं मनमानी॥
डसै किन्तु व्यापै न विष, ओषधि ताकी है सहज।
सब थल, सब थिति, सरवदा, राम कृष्ण गोविन्द भज॥

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर प्रयाग
श्रीकृष्णजन्माष्टमी २०१४ वि०

प्रभुदत्त

# नाग पत्नियों द्वारा कृष्ण स्तुति [१]

( ६२ )

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिन्–
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टे
र्धत्से दमं फलमेवानु शंसन् ॥*॥
( श्रीभा० १० स्क० १६ अ० ३३ श्लो० )

छप्पय

*कालि दमन हित कृष्ण कदम चढ़ि कूदें ह्रद में ।*
*नाग फननि पै नृत्य करें सुर हरषें मन में ॥*
*अहि अति व्याकुल भयो नाग पतिनी तहँ आई ।*
*शिशु चरननि में डारि जोरि कर विनय सुनाई ॥*
*प्रभु समदरसी देह धरि, करत दमन खल जननि को ।*
*धन्य भयो प्रभु पद परसि, दें सुहाग हम सबनि को ॥*

जो भाव लोक में गर्हित समझे जाते हैं, उन्हें ही यदि भगवान् भक्तों के आनन्द हित करते हैं, तो यह उनकी

---

* भगवान् की स्तुति करती हुई नाग पत्नियाँ कह रही हैं—"प्रभो ! आप का अवतार दुष्टों के निग्रह के निमित्त ही हुआ है, इस दृष्टि से आपने जो इस नाग को दंड दिया है वह न्याय संगत ही दिया है । आप के लिये जैसा ही शत्रु, वैसा ही पुत्र । आप जो शत्रु को दंड देते हैं वह द्वेष वश नहीं किन्तु उनके पाप के प्रायश्चित्त के ही निमित्त देते हैं ।

प्राणिमात्र परअनुग्रह ही है। जैसे क्रोध करना बुरा कार्य है, किन्तु भक्तों का विपत्ति भंजन करने के निमित्त किसी खल-स्वभाव के व्यक्ति पर क्रोध करते हैं, तो यह भक्तों के ऊपर तो ममता है ही उन खलों के ऊपर भी अनुग्रह है, क्योंकि इसी कारण उन्हें भगवान के दर्शन हो जाते हैं देव का कोप भी वरदानके तुल्य होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यमुनाजी के एक ह्रद में सौभरि ऋषि की दया के कारण गरुड़ से भयभीत हुआ कालिय नाग बस गया,उसने यमुनाजलको दूषित बना दिया था। जो उस ह्रद का जल पी लेता वहीं मर जाता। भगवान् ने उस कुण्ड को विशुद्ध बनाने का विचार किया वह कुण्ड के किनारे के एक बड़े भारी कदंबके वृक्षके ऊपर चढ़ गये और वहाँ से उस में कूद पड़े। बड़ी देर तक भगवान का कालिय नाग से युद्ध हुआ अन्त में नाग परास्त हो गया, भगवान् उस के फणों पर नृत्य करने लगे। कालिय रक्त वमन करने लगा। नागपत्नियों ने जब देखा हमारा पति अत्यंत ही श्रमित हो गया है, तो वे अपने छोटे छोटे नन्हें बच्चों को लेकर रोती हुई भगवान् के समीप आईं और हाथ जोड़ कर बड़ी दीनता से आर्त स्वर में स्तुति करने लगीं।

सूतजी कहते हैं—"नागपत्नियाँ भगवान्की स्तुति करती हुई कहतीं हैं—"प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं सर्वविद हैं, मङ्गलमय हैं न्यायकारी हैं। आपके सभी कार्य मङ्गलमय तथा जीवों के हित के ही निमित्त होते हैं। इस नाग ने प्राणियों का अनिष्ट किया था। यह अपराधी था। अपराधी को दंड देना स्वामी का कर्तव्य ही है, क्योंकि दुष्कृतियों के विनाश के निमित्त ही तो आप का अवतार होता है। दुष्टों का दमन आप के ही द्वारा न हो तो किसके द्वारा हो। आप किसी को द्वेषवश दंड नहीं देते, क्योंकि आप समदर्शी हैं। न तो जगत् में आपका कोई अपना है, न

पराया, न कोई शत्रु है न मित्र, आपके लिये शत्रु मित्र, पुत्र तथा रिपु दोनों समान है। पापी को जो आप दंड देते हैं, तो क्रोध में भरकर उसके अनिष्ट के निमित्त नहीं देते। आपके दंड देने से उसके पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है, यह आपका उनके ऊपर परम अनुग्रह है। आपका दंड पा लेने से वे पापी निष्पाप बन जाते हैं, उनके कल्मष दूर हो जाते है।

सर्प योनि कोई पुण्य का फल तो है नहीं। कोई धर्मात्मा है निरन्तर धर्म कर रहा है इससे उसके तीन जन्मों का बोध हो जाता है। पूर्व जन्म में उसने धर्म किया होगा, तभी तो उसे धर्मात्मा पुरुष की योनि प्राप्त हुई है। अब यदि वह धर्म कर रहा है तो आगे उसे इससे भी बड़ी धर्मात्मा योनि प्राप्त होगी। इसी प्रकार कोई पापी है और निरन्तर परपीड़ा रूपी पाप करता रहता है, तो इससे अनुमान होता है कि पूर्व जन्म मे इसने पाप किये होंगे, तभी तो यह पापयोनि में प्रकट हुआ। अब भी पाप कर रहा है इससे आगे भी पापी होगा। इसी न्याय से परपीड़ा पहुँचाने वाली यह सर्प योनि इसे मिली है, इससे इसका पूर्व जन्म में पापी होना तो प्रत्यक्ष ही है। अब भी यह प्राणियों को पीड़ित ही करता रहा है, किन्तु इसके कोई पूर्वजन्म के पुण्य उदय हुए हैं। कि आपने घर बैठे कृपा करके इसे दर्शन दे दिये। इसे अपने अंगस्पर्श का देव दुर्लभ सुयोग प्रदान कर दिया। हम तो इसे आपका परम अनुग्रह-अत्यन्त कृपा-ही मानती हैं।

यद्यपि बाह्य दृष्टि से देखने पर आपने इस पर क्रोध किया है, किन्तु हे देव! आपका क्रोध भी वरदान के तुल्य है। युद्ध में बहुत से असुर दैत्य क्रोध मे भरकर आप पर प्रहार करते हैं-आप को मारने की चेष्टा करते हैं–उन्हे गरुड़ पर चढ़ कर आप अपने सुदर्शनचक्र से मार डालते हैं, आपके हाथों मरकर वे लोग

संसार वन्धन से मुक्त हो जाते हैं, तो वह आपका क्रोध हुआ या वरदान हुआ ?

हे सर्वज्ञ ! सहस्र जन्मों में तपस्या, यज्ञ तथा दानादि द्वारा जो पुण्य किये जाते हैं, उन पुण्यों के फल से ही कभी आप के दर्शन हो सकते हैं। संसार में तपस्या और धर्म ये दो बहुत ही दुर्लभ हैं। प्रायः ! देखा गया है, कि जो तपस्या करते हैं उन्हें क्रोध आ जाता है, तपस्या के साथ ही साथ उनका अभिमान भी बढ़ जाता है। अभिमानी पुरुष में दीनता नहीं होती, वह दूसरों का सम्मान नहीं कर सकता जो निरन्तर तपस्या करता हुआ भी उसके अभिमान से रहित है, उसमें दीनता है और दूसरों का भी जो मान करता है, वही सच्चा तपस्वी है। ऐसे अमानी मानद तपस्वी की तपस्या से ही तुष्ट होकर आप उसे दर्शन देते हैं, प्रतीत होता है इस नाग ने भी पूर्वजन्म में कभी ऐसा तप किया होगा, तभी यह आपके अनुग्रह का भाजन बन सका।

हे धर्मावतार ! धर्म का पालन भी सब कोई नहीं कर सकते। धर्मपालन असिधाराव्रत है। समस्त जीवों पर दया करते हुए स्वधर्म का पालन जो करते हैं, उन धर्मात्माओं पर आप संतुष्ट हो जाते हैं। क्या कभी इस नाग ने किसी जन्म में सर्वजनानुकम्पा ऐसे किसी धर्म का आचरण किया था, जिसके फल स्वरूप आपके पादस्पर्श का इसे देवदुर्लभ सुयोग प्राप्त हो सका ?

प्रभो ! आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त होना यह साधारण पुण्यों का फल नहीं है। लक्ष्मीजी तो अत्यन्त सुन्दरी हैं, अत्यधिक सुकुमार हैं, फिर भी उन्होंने इन चरणों की रज प्राप्ति के निमित्त चिरकाल तक कठोर तप किया था, बड़े-बड़े व्रतोपवास किये, तब कहीं जाकर उन्हें आपके चरणों की रज प्राप्त हुई। इस जन्म में तो हमारे पति ने ऐसा कोई पुण्य कर्म किया नहीं, ऐसा कोई

कठोर तप किया नहीं, जिसके फल स्वरूप इसे ऐसा सुयोग प्राप्त हो सके। प्रतीत होता है, किसी जन्मान्तर का यह पुण्य उदय हुआ है। किसी अपर जन्म के सुकर्म का यह प्रभाव है कि इसे आपके पादपद्मों की पुण्य पराग के स्पर्श का अधिकार प्राप्त हो सका है।

हे पुण्यश्लोक! आपकी पदरज का प्रभाव साधारण नहीं है वह सब किसी को प्राप्त भी नहीं हो सकती। आपके भक्तों से कोई कहे कि आप भगवान् की चरणरज की इतनी इच्छा क्यों करते हो। क्यों नहीं स्वर्ग को ग्रहण कर लेते, जहाँ कामग विमान हैं, पीने को अमृत मिलता है, घूमने को नन्दनकानन जैसे दिव्य वन और क्रीड़ा के लिये एक से एक सुंदरी अप्सरा। ऐसे स्वर्ग में जाकर सुखोपभोग करो, तो वे भक्त आपकी पदरज के आगे उन स्वर्गसुखों को ठोकर मार देते हैं।

हे भक्तवत्सल! जब आपके भक्त स्वर्ग सुख नहीं लेते तो उनसे कहा जाता है, अच्छा समस्त पृथिवी के एकछत्र शासक बन जाओ। जो चाहे सो करो, जितना चाहो दान पुण्य करो किन्तु आपकी चरणरज के सम्मुख समस्त पृथिवी के आधिपत्य को वे तुच्छातितुच्छ समझते हैं। कोई उन्हें सार्वभौम पद भी देना चाहे, तो उसकी ओर भी वे आंख उठाकर नहीं देखते। फिर उनसे कहा जाता है, अच्छा अणिमा, गरिमा, महिमा, ईशत्व वशित्व आदि योग की सभी सिद्धियों को ले लो, प्रभु पदरज प्राप्ति के आग्रह को छोड़ दो, तो वे इस बात को किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं करते।

हे दयालो! फिर उनसे कहा जाता है, अच्छा जाने दो तुम चतुर्दश भुवनों के स्वामी लोकपितामह वेदगर्भ ब्रह्मा ही बन जाओ, तो आप की चरणरज के सम्मुख ब्रह्मपद की भी वे अव-

हेलना कर जाते हैं, उसे भी हेय बताते हैं। तब उनसे कैवल्य मोक्ष के लिये कहा जाता है, किन्तु वे आप की चरणरज के सम्मुख मुक्ति का भी आदर नहीं करते। मुक्ति को भी वे ग्रहण करने में हिचकिचाते हैं। ऐसी है आप की चरणरज की महिमा। उस चरणरज को इस सर्प ने अनायास ही प्राप्त कर लिया। यह तपस्या करने वन में भी नहीं गया। घर बैठे ही इच्छा न करने पर ही इसे अपने आप प्राप्त हो गई।

प्रभो! आप की चरणरज सरल सीधे सौम्य सतोगुणी पुरुषों को ही चिरंतन की तपस्या के अनंतर प्राप्त होती है। यह नागराज स्वभाव से ही क्रोधी है, आकरण क्रोध करता है, बिना अपराध के भी प्राणियों को पीड़ा पहुँचाता है। योनि भी इसकी अत्यंत अधम है। सदा तमोगुण में व्याप्त रहता है। तमोगुणी स्वभाव का तो है ही। आश्चर्य की बात यही है कि ऐसे क्रोधी, तमोगुणी, क्रूरस्वभाववाले सर्प को भी आप की चरणरज प्राप्त हो सकी। वह भी एक बार नहीं अनेक बार, वह भी थोड़ी देर तक नहीं बहुत देर तक, किसी को तो केवल कर से ही स्पर्श करने को मिलती है, कर से स्पर्श करना तो बहुत दूर की बात है, जो आप की पावन पादपद्म पराग का मन से भी स्मरण करलेता है, केवल उसकी प्राप्ति की इच्छा मात्र भी करता है, उसी का संसारचक्र ढीला पड़ जाता है, उसी का भवबन्धन कट जाता है। उसी को सब कुछ मिल जाता है, उसी को भवसागर में भटकते हुए शांति मिल जाती है। उसी को सम्पूर्ण विभव प्राप्त हो जाता है। फिर इसने तो आप के चरणों की रज को प्रत्यक्ष प्राप्त किया है। अपने चरणों को आपने इसके प्रत्येक फण पर स्थापित किया है, जो फण अभिमान से नवा नहीं, उसे अपने पाद प्रहार से नत बनाया है। जो अभिमान से ऊँचा उठा हुआ था, उसे नीचे किया

है, जो उन्नत था उसे नत बनाया है। इसके भाग्य की सराहना कैसे की जाय ?

सूतजी कहते हैं–"मुनियो ! इस प्रकार नागपत्नियों ने भगवान् की भाँति २ से स्तुति की। वे और भी जो स्तुति करेंगी, उसे मैं आगे कहूँगा।

## छप्पय

है अमान दै मान तपस्वी बनि व्रतधारी।
पूर्व जनम में करी तपस्या का अहि भारी॥
सब प्रानिनि पै दया धरम जिह पालन कीन्हो।
स्वयं आइ सरवेश पदुम पद सिर धरि दीन्हों॥
पदरज इच्छुक भक्त तब, समुझें पद विसमरन दुख।
स्वरग ब्रह्मपद, सिद्धि सब, नहिं चाहें अपवरग सुख॥

## पद

कबहुँ तप कीयो जाने भारी।
जनम जनम में रह्यो अमानी, मानद परहितकारी ॥१॥
सब भूतनि पै दया दिखाई, धोर धारना धारी।
पदरज पाई अज सुर दुरलभ, आये घर बनवारी ॥२॥
जा रज हित कमला तप कीन्हों, ह्वै सुकुमारी नारी।
जा रजकूँ सुर नर मुनि तरसें,सनकादिक ब्रमचारी ॥३॥
जा रज पाइ स्वरग ठुकरावें,मोक्ष न मानैं प्यारी।
सोई रज सिर धरी हरषि हरि, धन्य भयो विषधारी ॥४॥
तम प्रधान तनु निन्दित क्रोधी,प्रभु सब दोष बिसारी।
नृत्य कर्यो फन फन पै प्रमुदित, हरि नटवर गिरिधारी ॥५॥

# नागपत्नियों द्वारा कृष्ण स्तुति (२)

( ६३ )

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥
(श्री भा० १० स्क० १६ अ० ३९ श्लो०)

छप्पय

*बन्दन पुनि-पुनि करैं सनातन पुरुष पुरातन ।*
*परमात्मा परमेश पतित पावन मनभावन ॥*
*प्रकृति प्रवर्तक ब्रह्म ज्ञान विज्ञान निधाना ।*
*भूत भव्य भुवनेश भक्तभयहर भगवाना ॥*
*सबके आश्रय विश्वपति, विश्वम्भर विश्वेश विभु ।*
*प्रान, बुद्धि, मन चित्त सब, तुमहिँ त्रिगुन अभिमान प्रभु ॥*

यद्यपि भगवान् कुछ कर्म नहीं करते, फिर भी संसार के समस्त कर्म उन्हीं की इच्छाशक्ति द्वारा होते हैं। वे जब इच्छा करते हैं तब रचना हो जाती है, उनकी इच्छा मात्र से ही चराचर की प्रलय हो जाती है। इसमें और किसी का वश नहीं, अधिकार नहीं समस्त जीव उनकी इच्छा रूपी नकेल में बँधे हैं, जिधर उनका

---

* भगवान् की स्तुति करती हुई नागपत्नियाँ कह रही हैं—प्रभो ! आप भगवान् को प्रणाम है, सबके अन्तःकरणों में विराजने वाले को, महान् आत्मा को, सम्पूर्ण भूतों के एकमात्र आश्रय को, प्रकृति से परे परमात्मा को तथा सर्वभूतस्वरूप परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है ।

संकेत हो जाता है, उधर ही वे दौड़ने लगते हैं। अतः जीव का एकमात्र पुरुपार्थ यही है कि वह सर्वावस्था में, सर्वकाल में, सर्वत्र उन श्यामसुंदर को नमस्कार करता रहे। नमस्कार का अर्थ है नमम। अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है, जो कुछ है वह प्रभो! सब तुम्हारा ही है। अतः तुम्हें वार वार प्रणाम है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की स्तुति करती हुई नागपत्नियाँ कह रही हैं–हे प्रभो! आप पडैश्वर्यपूर्ण हैं,यह कहना भी नहीं बनता क्योंकि यदि ऐश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, वैराग्यादि ऐश्वर्य पहिले से होते और आप उन्हें धारण करते तब तो आप को उनसे पूर्ण कहते। आप की इच्छा ही से ये सब ऐश्वर्य प्रकट हो जाते हैं, आप ही समस्त वस्तुओं का, समस्त भावों का नाम करण करते हैं, अतः आप भगवान को हमारा प्रणाम है।

हम जो अपनी पृथक् सत्ता मानते हैं सो भी मिथ्या ही है। आप के ही अस्तित्व से हमारा अस्तित्व है, आपकी सत्ता से ही सबकी सत्ता है,आपके बिना कुछ भी नहीं। अतः आप समस्त चराचर जगत् में व्याप्त हैं, सबके अन्तःकरण में विराजमान हैं। आत्मा शब्द से जीव, शरीर, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण सभी का बोध होता है, किन्तु आप इन सबसे भी महान् हैं, अतः महात्मा आप ही हैं। जैसे सब प्राणियों का आश्रय पृथिवी है। उसी प्रकार समस्त भूतों के-समस्त जीवों के-एकमात्र आश्रय आप ही हैं। आश्रय क्या है, जितने भी भूत हैं-जितने भी प्राणी हैं-सब आपका ही स्वरूप हैं। आप प्रकृति से परे हैं, समस्त प्राकृत पदार्थों से अतीत हैं, ऐसे आप परमात्मा के पादपद्मों में हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! समस्त ज्ञान, समस्त विज्ञान आपसे ही उत्पन्न होता है, आप ही ज्ञान विज्ञान के आलय हैं, निधान हैं, सबकी खान

हैं। प्रकृति स्वयं जड़ है, यन्त्र है, उसे चलाने वाले उसके प्रवर्तक आप ही हैं। ये जो सत्व, रज और तम तीन गुण हैं ये प्रकृति के ही विलास हैं, स्वयं तो आप निर्गुण हैं। गुणों में जब क्षोभ होता है-प्रकृति की साम्यावस्था समाप्त होकर जब उसमें असाम्य होता है-विकृति होती है तभी सृष्टि होती है, ये जो विकार हैं प्राकृत गुणों में ही संभव हैं। आप स्वयं तो निर्विकार हैं। सब की शक्ति की इयत्ता है सीमा है, किन्तु आपकी शक्ति निस्सीम है, अनंत है इसीलिये आपको ब्रह्म कहते हैं। हे सर्वात्मन्! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभो! काल आपका ही स्वरूप है। काल शक्ति भी आप में ही निवास करती है अर्थात् काल शक्ति के भी आश्रयस्थान आप ही हैं, काल के जो अवयव क्षण, लव, काष्ठा, पल, घड़ी, प्रहर, दिन, रात्रि, वर्ष, दिव्यवर्ष मन्वन्तर, कल्प, महाकल्प, आदि सब आपके ही स्वरूप हैं। कब सृष्टि का काल है, कब तक स्थिति का काल है और कब संहार का काल है, इसके भी नियन्ता निर्माता आप ही हैं, इन सब समयों के सदा सर्वदा साक्षी आप ही हैं। यह चराचर विश्व आप का ही रूप है। आप ही जगत् रूप में हो गये हो। इस विश्व के एक मात्र साक्षी आप ही हैं, विश्व के बनाने वाले विधाता भी आप ही हैं। विश्व के कारण विश्व के बीज भी आप ही हैं, आप ही पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच भूतों में बँट गये हो। बँट क्या गये हो इन सब मे परिपूर्ण रूप से आप ही आप विराजमान हो, आप ही इन भूतों की कारणावस्था पंच तन्मात्रा हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ आप ही हैं। आप ही पंच प्राण हैं, आपही मनन करने वाले मन हैं। आप ही सद् असद् का विवेचन वाली बुद्धि हैं और आप ही चिन्तन करने वाले चित्त भी हैं। आपको सबका

ज्ञान हैं, आप सर्वज्ञ हैं, फिर भी आपने अपने आत्मनुभाव को त्रिगुणात्मक अभिमान के द्वारा प्रच्छन्न कर रखा है, छिपा रखा है। स्वात्मानुभाव निगूढ़ होने से सब कोई आपको प्राप्त नहीं कर सकते।

स्वामिन्! आपका अन्त नहीं इसीलिये अनन्त करके हम अज्ञानियों द्वारा आप पुकारे जाते हैं। आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं। आप कूटस्थ हैं, उपाधिकृत विकार से रहित हैं। आप से कोई बात छिपी नहीं इसीलिये आप विपश्चित् हैं, सर्वज्ञ हैं। कोई कहते हैं-आप हैं, कोई कहते हैं नहीं हैं। कोई कहते हैं-आप सर्वज्ञ हैं, कोई कहते हैं, अल्पज्ञ हैं,कोई कहते हैं निराकार हैं कोई कहते हैं साकार हैं, इस प्रकार नाना मतभेदों के आश्रय, नाना मत-मतान्तरों को प्रश्रय देने वाले, उनका अनुवर्तन करने वाले आप ही हैं। आपको ही आधार मानकर सब वाद-विवाद हैं। सबके केन्द्रविन्दु आप ही हैं, आप ही राम आदि शब्द हैं और जिसमें योगीगण रमण करते हैं ऐसा राम का अर्थ भी आप ही हैं, हे सर्वनाम! हे सर्वेश्वर! हम आपके चरणकमलों में बारम्बार नमस्कार करते हैं।

प्रभो! प्रत्यक्ष, अनुमानादि जो प्रमाण हैं, उनके मूल भी आप ही हैं, प्रमाण सब आप के ही उद्देश्य से तो दिये जाते हैं। औरों का ज्ञान अपेक्षा कृत है, किन्तु आप तो स्वतः ज्ञानवान् हैं, ज्ञान स्वरूप हैं। आप ही समस्त शास्त्रोंके एकमात्र उत्पत्ति स्थान हैं। वेदों में जो यह वर्णन है—'यह करना चाहिये, यह न कराना चाहिये' ऐसा विधि निषेध रूप भी आपका ही है, स्वयं वेद स्वरूप आप ही हैं, आपको प्रणाम है।

हे वासुदेव! पाँचरात्र आदि तन्त्र शास्त्रों में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस प्रकार आप चतुर्व्यूह रूप से

वर्णित हैं। उनमें से आप केवल वसुदेवात्मज वासुदेव ही नहीं हैं, आप ही शुद्ध सत्वमय वासुदेव हैं, आप ही संकर्षण हैं, आप ही अनिरुद्ध हैं, और आप ही प्रद्युम्न हैं। आप समस्त सात्वतों के समस्त यादवों के, तथा समस्त भक्तों के अधिपति हैं, स्वामी हैं, ईश हैं। आप ही मन-बुद्धि, चित्त और अहंकार यह अन्तःकरण चतुष्टय हैं, उसके प्रकाशक हैं। आप बहुरूपिया हैं। जो आपका यथार्थ रूप है वह तो प्राणियों के दृष्टिगोचर होता नहीं। आप गुणों का आवरण पहिन कर नाना रूप रख लेते हैं। विभिन्न रूपों में परिणित हो जाते हैं। अन्तःकरण की वृत्तियों से उपलक्षित हैं, तथा अन्तःकरण में जो ये भाँति-भाँति की असंख्यों वृत्तियाँ उठती हैं, उन सब वृत्तियों के साक्षी एकमात्र आप ही हैं। आप सबको प्रकाश देने वाले हैं, किन्तु आप को किसी के प्रकाश की आवश्यकता नहीं। ऐसे स्वयं प्रकाश स्वरूप आप प्रभु के पादपद्मों में हमारा प्रणाम है।

हे हृषीकेश! आप जो नाना अवतार धारण करके विविध भाँति की असंख्यों लीलायें करते हैं, उनका रहस्य भली भाँति कोई समझ नहीं सकता। जितने भी ये दृश्य पदार्थ हैं, जो भी यह सब कुछ देखा सुना जाता है, सबकी सिद्धि आपके ही अधीन है, इनमें से आपको पृथक् कर दिया जाय; तो फिर किसी पदार्थ का आस्तित्व ही नहीं। आप पूर्ण काम हैं, आत्माराम हैं. आपको रमण करने के लिये अन्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं। आप सदा सर्वदा अपनी आत्मा में ही रमण करते रहते हैं, आप ही मुनि हैं और आप ही मौन स्वभाव वाले मौनी हैं।

" हे सर्वज्ञ ! आप पर, अवर, स्थूल तथा सूक्ष्म गतियोंके ज्ञाता हैं। समस्त विश्व के साक्षी हैं। विश्व से सर्वदा रहित भी हैं और विश्व स्वरूप भी हैं। आप में अपवाद आरोप दोनों ही संभव हैं। सबके कारण तथा विश्वब्रह्माण्डों के साक्षी हैं, ऐसे आप विश्व-रूप को बारम्बार प्रणाम है।

विभो ! आप को सब कोई निष्क्रिय कहते हैं, फिर भी आप अपनी ही काल शक्तिकी प्रेरणा से जब सृष्टि का समय आजाता है सृष्टि करते हैं, पालन के समय पालन करते हैं और संहार के समय समस्त विश्व को बटोर कर अपने उदर में भी रख लेते हैं जब जिन जीवों के जैसे कर्म उदय होने का काल होता है, तो उन्हें उदय करके उनसे भाँति-भाँति की क्रीड़ायें भी आप ही करते हैं। आपके लिये अच्छा बुरा, उत्तम अधम, ऊँचा नीचा ऐसा कोई भेद-भाव नहीं। सात्विक स्वभाव वाले शान्त भी आप ही हैं, राजस स्वभाव वाले अशान्त भी आप ही हैं और मूढ़ स्वभाव वाले तामस भी आप ही हैं, जितनी भी योनियाँ हैं वे सब ही आप के खिलौने हैं, सभी से आप क्रीड़ा करते रहते हैं, आपके लिये सभी विनोद के उपकारण मात्र हैं।

जब आपकी जैसी इच्छा होती है, वैसा ही आप रूप रख लेते हैं। संकर्षण रूप में सहस्त्रफणों वाले सर्प भी आप ही बन जाते हैं, राजाओं के रक्त से कुंड भरने वाले परशुराम भी आप ही हो जाते हैं, इस समय ग्वाल बालों के साथ हँसने खेलने वाले, गोपियों के साथ कमनीया क्रीड़ा करने वाले श्रीकृष्ण भी आप ही

वन गये हैं। इस समय आप सत्वगुण का नाटक रच रहे हैं। साधु स्वभाव वालों से प्रेम कर रहे हैं। राजस तामसों को दंड दे रहे हैं, इससे आप इस नाग को दंड दे रहे हैं। नाग कोई दूसरा थोड़े ही है। आपकी ही संतान है। अपराध हो जाने पर पिता सन्तान को दण्ड देता ही है, इसमें कोई नई बात नहीं।

प्रभो! बच्चों को प्रत्येक अपराध पर दंड नहीं दिया जाता। तीन अपराध तो केवल चेतावनी देकर ही क्षमाकर दिये जाते हैं। तीन क्षमा न भी हो, तो पहिला अपराध तो सब कोई क्षमा कर देते हैं प्रजा के प्रथम अपराध को राजा सहन कर लेता है। इसका यह प्रथम अपराध है, इसे तो भगवान्! क्षमा ही कर दीजिये। तामस योनिका जन्तु है, मूढ़ है तमोगुणी है, आप की महिमा को जानता नहीं था आपके प्रभाव से अपरिचित था, इसी से ऐसी धृष्टता कर दी। आप इसे क्षमा कर दें।

प्रभो! इसे अपनी करनी का पर्याप्त दण्ड मिल गया। यह आप के पाद प्रहारों से मृतक सदृश बन गया है, यदि अब भी आप इसे न छोड़ेंगे तो यह मर जायगा। यह मरना ही चाहता है, इसके ऊपर दया की दृष्टि कीजिये। हमारे सिन्दूर की ओर निहारिये, हमारे इन छोटे छोटे बालकों की ओर देखिये। हम स्त्रियों के प्राण तो पति ही हैं, हम आपसे प्राणों की भिक्षा माँग रही हैं। स्त्रियाँ तो सदा से अवध्या होती हैं। साधु पुरुष स्त्रियों पर स्वाभाविक कृपा करते हैं। हम आपकी दासियाँ हैं, किंकरी हैं भक्ता हैं, हमारे योग्य सेवा बताइये। संसार में आप की सेवा ही

सार है, सेवा से सब कुछ मिल सकता है। कहीं भी किसी भी स्थान में आप के निमित्त से जो सेवा करता है उसके समस्त मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। जो पुरुष भक्ति भावसे श्रद्धा पूर्वक आपकी सेवा करते हैं, वे समस्त बन्धनों से सभी प्रकार के दुःखों से, समस्त भयों से निर्मुक्त बन जाते हैं। अतः हम दासियों पर कृपा कीजिये, हमें अपने चरणकमलों की सेवा का सुअवसर दीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार जब नागपत्नियों ने भगवान् की स्तुति की, तब भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने कालिय नाग को अभय प्रदान की। यह मैंने आपसे नागपत्नियों की स्तुति कही अब देवराज इन्द्र ने जिस प्रकार गोवर्धन धारण करने के अनन्तर भगवान गोवर्धनधारी की स्तुति की। उसे मैं आपसे कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।

### छप्पय

हे अनन्त कूटस्थ सूक्ष्म सरवज्ञ विपश्चित।<br>
अस्ति नास्ति के बिन्दु शब्द अरु अरथ सुनिश्चित॥<br>
चतुर व्यूह, विभु, वेद, रमन निष्क्रिय अविनासी।<br>
भरमहेतु अवतरित दयामय घट घट वासी॥<br>
छिमा करें अपराध प्रभु, कीयो अहि अभिमान भरि।<br>
प्रभु प्रसन्न सुनिकें भये, छोड़यो अहिकूँ अभय करि॥

पद

धरम हित प्रकटे प्रभु परमेश्वर ।
सब के बीज विष्णु अविनासी, विश्वम्भर विश्वेश्वर ॥१॥
करौ न कछु सब कछुकरि डारौ, प्रकटौ जगत चराचर ।
जब जैसे गुन बढ़हिं तबहिं तस, धरौ रूप बिधि हरि हर ॥२॥
नृप अपराध प्रथम बिसरावैं, देव दया के सागर ।
चाहैं तजन प्रान अहि अबई, कृपा करौ करुनाकर ॥३॥
माँगैं भीख देहिँ अबलनिकूँ, पति प्रानिनि परमेश्वर ।
सौंपें सेवा सुखसागर प्रभु, दासी हम सरवेश्वर ॥४॥

# नागपत्निकृत कृष्ण स्तुति

नागपत्न्य ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिं,
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टे,
धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥१॥
अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो,
दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।
यद् दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः,
क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥२॥
तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं,
निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया,
यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३॥
कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे,

तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो,
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥४॥
न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं,
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा,
वांछन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥५॥
तदेष नाथाप दुरापमन्यै,
स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो,
यदिच्छतः स्याद् विभवः समक्षः ॥६॥
नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥७॥
ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥८॥
कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥९॥
भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ।

त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥१०॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥११॥
नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥१२॥
नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥१३॥
नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।
गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥१४॥
अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥१५॥
परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥१६॥
त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो,
गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः,
समीक्षयामोघविहार ईहसे ॥१७॥
तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां,

शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां,
स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥१८॥
अपराधः सकृद् भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ॥१९॥
अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥
विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ॥२०॥

# देवेन्द्र द्वारा गोवर्धनधारी की स्तुति

## ( ९४ )

विशुद्ध सत्वं तव धाम शान्तम् ।
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो
न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० २७ अ० १ श्लो० )

छप्पय

*गिरि गोवरधन धारि इन्द्र को मान मिटायो ।*
*गरब खरब जब भयो स्वरगपति प्रभु ढिँग आयो ॥*
*विनती करिवे लग्यो आपु हैं शुद्ध सत्वमय ।*
*सदा गुननि तैं रहित होहिं अवतरित हरहिं भय ॥*
*लीलामय तनु धारि प्रभु, सन्तनि की विपदा हरैं ।*
*अभिमानिनि के मान कूँ, मेटैं मद मर्दन करैं ॥*

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए इन्द्र कह रहे हैं—"हे नाथ ! आप का विशुद्ध सत्व धाम शान्त है, तपोमय है तथा रजोगुण तमोगुण से रहित है । और यह जो गुणप्रवाह रूप प्रपंच है यह तो मायामय है । आप इससे सर्वथा रहित हैं । शरीर धारण करने का जो अनुबन्ध कर्म है, वह आप में है ही नहीं । उससे आपका सम्बन्ध नहीं ।

जीव जानता है, एक दिन हमें अवश्य मरना है, किन्तु नित्य व्यवहार मे इस बात को भूल जाता है, यदि सदा मृत्यु की स्मृति बनी रहे तो पुरुष पाप क्यों करे ? सभी जानते हैं ये संसारी भोग नश्वर हैं, सदा एक स्थान में रहने वाले नहीं हैं परिवर्तन शील हैं, मरने पर ये सब के सब साथ न जायँगे, यहीं पड़े रह जायँगे। फिर भी अधिक से अधिक वस्तुओं के संग्रह की चेष्टा करता है, कोई अपनीकहानेवाली वस्तु नष्ट हो जाती है, तो ऐसा लगता है मानों प्राण ही निकल गये। यदि विषय सम्बन्धी पदार्थों की अनित्यता सदा स्मरण रहे, तो पदार्थों के आने जाने मे प्राप्ति तथा नाश में पुरुष को न हर्ष हो न विषाद, वह उनमें निःसंग होकर बर्ताव करेगा। इसी प्रकार जीव को यह भान हो जाय कि यह अधिकार,प्रभाव, तेज, पद, प्रतिष्ठा चार दिन की है, आज जो इन्द्र है, वही कल चींटा बन सकता है, तो वह चाहे कितने भी बड़े पद पर प्रतिष्ठित हो जाय, उसे अभिमान न होगा। वह धन के मद मे मदमत्त होकर अनर्थ न करेगा, दूसरों का अपमान न करेगा और किसी को अपने से हेय समझ कर उसकी हँसी न उड़ावेगा, क्योंकि वह जानता है, अनेक रूपों में मेरे श्यामसुन्दर क्रीड़ा कर रहे हैं, वे ही विविध वेष बना कर विचर रहे हैं। वे ही नाना रूपों मे सब कार्य कर रहे हैं, भगवान् ही जिन्हें सन्मति देते हैं, वे ही जिन पर कृपा करते हैं, वे ही इस रहस्य को समझते हैं और समझ कर वे भगवान् की स्तुति प्रार्थना ही करते रहते हैं। भगवान् की सर्वव्यापकता और विषयों की क्षणभंगुरता का बोध होने पर केवल स्तुति करने के अतिरिक्त और करने को रह ही क्या जाता है ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गोकुलवासी गोप प्रति वर्ष कार्तिक मास में इन्द्र की पूजा करते थे। उसमे इन्द्र को बड़ा

अभिमान हो गया, वह समझने लगा मैं ही सबका एकमात्र अधीश्वर हूँ। इन्द्र भगवान् के भक्त हैं, भक्तों के अभिमान को मेंटना भगवान् का प्रथम कर्तव्य है। अतः इन्द्र के मद को मर्दन करने के निमित्त भगवान् ने इन्द्र के स्थान पर गिरिराज गोवर्धन की पूजा करायी। इससे इन्द्र ने अपना अपमान समझा, अत्यंत कुपित होकर उसने प्रलय करने वाले मेघों को भेजा और कहा—नन्द के व्रज को डुबा दो। भगवान ने गोवर्धन को छत्ते की तरह धारण करके व्रजवासियों को बचाया। जब सात दिन तक प्रलय-कारी मेघ कुछ न कर सके, तब इन्द्र का मद चूर हुआ और वह ब्रह्माजी की आज्ञा से सुरभि के साथ भगवान् के समीप आकर उनकी स्तुति करने लगा।

भगवान् की स्तुति करते हुए इन्द्र कह रहे हैं—"प्रभो! मैंने समझा था, कि आपने लोभ और अहंकार के वशीभूत होकर मेरी पूजा बन्द करा दी है इस पर मैंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया, किन्तु भगवन्! यह मेरी भूल थी; अज्ञान था, मोह था, आप निष्प्रपञ्च हैं। आप इस मायिक जगत् की भाँति नहीं हैं आप उस दिव्य धाम के भी निवासी नहीं हैं जहाँ सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों का प्रवाह ही बहता हो, आप तो गुणातीत लोक के हैं। सत्वगुण से भी परे, एक विशुद्ध सत्व है आप के दिव्यातिदिव्य लोक में वही सत्व सदा सर्वदा व्याप्त रहता है। ये प्रकृति के त्रिगुण तो वहाँ पहुँच भी नहीं सकते। वह सभी खटखटों से परे प्रशान्त धाम है। उस लोक में जिन्होंने उग्र तपस्या नहीं की, वे वहाँ पहुँच ही नहीं सकते। वहाँ जब ये त्रिगुण वाला सत्व भी नहीं, तो रजोगुण तमोगुण की कथा ही क्या है। अथवा आपका तेज ही विशुद्ध सत्वमय है। शान्त है तथा ज्ञानमय है। उसमें राजस तामस के अंश भी नहीं, आप

का लोक या तेज अमायामय है और यह दृश्य प्रपञ्च मायामय है। अज्ञान के द्वारा ही यह जगत आप में भासित हो रहा है। देहादि की प्राप्ति कर्म के अनुबन्ध से है, आप में कर्म का लेश भी नहीं. आप में जो कर्म दिखाई दे रहा है, वह आभास मात्र है।

भगवन! यह देह कर्मों के द्वारा प्राप्त होती है और कर्म अज्ञान मूलक हैं। आप की न प्राकृत देह है न आप में अज्ञान का अंश है। लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा अहंकार आदि तो अज्ञान के चिन्ह हैं, ये तो आप में सम्भव हो ही नहीं सकते। जब आप में लोभ मोहादि नहीं हैं, तो आपने मेरी पूजा बंद क्यों की ? क्यों गोवर्धन को धारण किया ? सो, प्रभो! यह तो आप के भक्तों को सुख देने वाली क्रीडायें हैं। आप धर्म की रक्षा और दुष्टों के दमन के निमित्त लोकवत लीला करते हैं। जैसे लोक में राजा अपराधियों को उनके अपराध के लिये दण्ड देता है, वैसे ही आप भी खलों के निग्रह के निमित्त दण्ड धारण करते हैं। जब हम जैसे क्षुद्र अधिकार को प्राप्त करके अपने को ईश्वर मानने लगते हैं, आप की सत्ता को भूल जाते हैं. तब आप हम अभिमानियों के मद को मर्दन करने के निमित्त, हम मदान्धों की अज्ञान से मिची आँखों को खोलने के निमित्त, विविध भाँति की सुखद सरस क्रीड़ायें करते हैं। उनसे हम अभिमानियों के गर्व का भी नाश होता है और साथ ही लोक का भी कल्याण होता है। आप अनन्त हैं, दिव्य अप्राकृत हैं, इसी प्रकार आप की लीलायें भी अनन्त दिव्यातिदिव्य तथा प्राकृत विकारों से रहित हैं, उनके श्रवण करने से संसार बन्धन कट जाते हैं।

इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाले एकमात्र

आप ही हैं, अतः आप ही इसके पिता हैं, जगतपिता होने के नाते मेरे भी पिता हैं, मेरे ही पिता नहीं मेरे पिता पितामह के भी पिता हैं। मैंने अनजान में जगत्पिता आपकी अवज्ञा की। भगवन्! आप ही सबके एकमात्र गुरु हैं, इसीलिये सब आप को "कृष्णं वन्दे जगत् गुरुम्" कहकर नमस्कार करते हैं, मुझ अभिमानी ने यह अक्षम्य अपराध किया, गुरुद्रोह किया। मैं समझता था, मैं ही एकमात्र अधीश्वर हूँ, किन्तु न जाने मुझ जैसे कितने इन्द्र आप के प्रत्येक रोम में पड़े कुलबुला रहे हैं, सबके अधीश्वर तो आप ही हैं। जो दुर्निवार काल भी स्वतंत्र नहीं उसका नियंत्रण भी आप ही करते हैं, आप के भय से ही काल कलयन करता है। अतः कालस्वरूप भी आप ही हैं। आप स्वच्छन्दचारी, लीलाविहारी जगत्हितकारी हैं। आपकी समस्त चेष्टायें विश्वकल्याणार्थ ही होती हैं।

आप अपने लोक से अवतरित होते हैं, उतर कर प्राकृत पुरुषों में घुल मिल जाते हैं। सर्वथा प्राकृत पुरुषों जैसा आचरण करने लगते हैं। मुझ जैसे क्षुद्र अधिकारवालों को अपने अधिकार का, ऐश्वर्य का, विभव का अभिमान हो जाता है, अभिमान के कारण बुद्धि पर परदा पड़ जाता है, उस समय प्राकृत पुरुषों में छिपे हुए आप को भूल जाते हैं। और आप को भी अपना प्रभाव जताने लगते हैं, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके आप को भी भयभीत बनाना चाहते हैं, किन्तु जब आप के भय से ही पंचभूत, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र तथा अन्य सभी कार्य कर रहे हैं, उन्हें भला भय किसका हो सकता है। जब भय का अवसर आने पर भी आप भयभीत नहीं होते, तो हम अभिमानियों का अभिमान चकनाचूर हो जाता है। फिर हम लोगों का जमा हुआ मद विगलित होकर बह जाता है, हमारी अभद्रता नष्ट हो

जाती है और फिर हम अभिमान छोड़कर आप को शरण में आ जाते हैं, भक्तिमार्ग का अनुशरण करने लगते हैं। प्रभो! प्राणी अभिमान वश ही नहीं नमता, बड़प्पन के अभिमान में ही सिर नहीं झुकाता। जहाँ अभिमान नष्ट हुआ, मद चूर हुआ तहाँ वह झुक जाता है, नत हो जाता है, नमस्कार करने लगता है, स्तुति प्रार्थना करता है, भक्त बन जाता है। आप जो भी चेष्टायें करते हैं, उनसे शिष्टों का प्रतिपालन तथा दुष्टों का शासन होता है।

प्रभो! मैंने कुछ जान बूझकर तो अपराध किया नहीं, आपने जो मुझे अल्प अधिकार, क्षुद्र ऐश्वर्य दे दिया था, उसी के मद में मदमत्त होकर मैं मदान्ध बन गया। फिर मैं इस बात को भूल हो गया, कि आप की महान शक्ति के सम्मुख मेरी क्षुद्र शक्ति किस काम आवेगी? आप के अपार ऐश्वर्य के सम्मुख मेरा संकुचित सीमित ऐश्वर्य कर ही क्या सकेगा। इन बातों को भुला कर ही मैंने अपनी शक्ति का प्रयोग कर दिया, जैसे कोई अबोध बालक नाम को नाक लेकर अपने पिता को डराना चाहे। जैसे माता के दिये खिलौने से ही उनपर प्रहार करना चाहे, यह अज्ञता है, मूढ़ता है, अपराध है। सो, हे ईश! आप मेरी इस मूढ़ता को क्षमा करें, मेरे इस अक्षम्य अपराध को क्षमा करें, मेरी अशिष्टता को भूल जायँ, और ऐसा आशीर्वाद दें, कि आगे से ऐसा अपराध मुझसे कभी न हो, इस प्रकार मेरी बुद्धि भ्रष्ट फिर कभी न होने पावे।

प्रभो! अब मेरी बुद्धि में बात बैठ गयी। अब मुझे आप के अवतार का रहस्य प्रतीत हुआ। आज कल पृथिवी पर क्षत्रिय रूप से असंख्यों असुर उत्पन्न हो गये हैं, उनके पास असंख्यों सैनिक हैं, अगणित सेनाओं के वे नायक हैं, वे किसी अन्यके मारे

ारने के नहीं। वे अपने ही प्राणों का भरण पोषण करते हैं, उन्हें पना ही ऐश्वर्य बढ़ाना इष्ट है। वे भू के भार भूत हो रहे हैं, नके भार से वसुन्धरा दबी जा रही है। उनका संहार करने के निमित्त ही आप अवनि पर अवतरित हुए हैं। दुष्ट विनाश गे आप के अवतार का गौण विषय है, मुख्य विषय तो भक्तों का भरण पोषण ही है। जो भक्त आपके चरणारविन्दों के नुगामी हैं, जिन्होंने आपके चरणों की शरण ले ली है, उन्हीं के लालन पालन और सुख शान्ति के निमित्त आप की समस्त चेष्टायें हैं। आप घट घट वासी हैं, अचिन्त्य अविनाशी हैं, प्रेम प्रकाशी हैं, आप वासुदेव हैं, सात्वतों के पति हैं, यादवाधीश हैं, आप के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

आप के अवतार में कोई कारण नहीं, आप स्वच्छन्द हैं, अपनी इच्छा से ही-मनोविनोद के निमित्त-शरीर धारण करते हैं, विशुद्ध विज्ञान घन, सर्वमय, सबके कारण तथा सर्वभूतमय हैं। आपके चरणारविन्दों में नमस्कार है।

नाथ! मेरे अभिमान ने ही यह अक्षम्य अनर्थ करा डाला। जब समय पर गोपों द्वारा मुझे यज्ञभाग नहीं मिला। आप के कहने से उन्होंने मेरे निमित्त यज्ञ नहीं किया, तो मैं तो प्राकृत ही ठहरा, मुझे क्रोध आ गया और क्रोध के वशीभूत होकर ही मैंने वर्षा और वायु से व्रज को नष्ट करने की अव्यर्थ असफल चेष्टा की। यदि प्रभो! आप मुझ पर कृपा न करते, मेरे ऊधम को सफल हो जाने देते, तो मेरा अभिमान और भी अधिक बढ़

जाता, मैं और भी अभिमान में भर जाता और फिर न जाने क्या क्या अनर्थ कर डालता। किन्तु आपने मेरे ऊपर अनुग्रह करके मेरे अभिमान को बढ़ने नहीं दिया, मेरे उद्योग को सफल नहीं होने दिया। मेरा समस्त उद्यम व्यर्थ हो गया। मेरे संकल्प को मोघ बना दिया, इससे मेरा जगदीश्वरपने का कच्चा अभिमान ऊपर से गिर कर फट से फूट गया, चकनाचूर हो गया और मेरी तुरन्त आँखे खुल गयीं। आप ही मेरे स्वामी हैं,आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही मेरे पिता हैं, आप ही मेरे आत्मा हैं तथा आप ही मेरे सर्वस्व हैं, आप के पुनीत पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है बारम्बार नमस्कार है। अनेक प्रकार सेअभिवादन है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार इन्द्र की क्षमा प्रार्थना पर भगवान् ने उन्हे सदुपदेश देकर क्षमा कर दिया। यह मैंने अत्यंत संक्षेप मे इन्द्रकृत श्रीकृष्ण की स्तुति आप से कही। अब जैसे वरुणजी ने भगवान् की स्तुति की, उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

### छप्पय

*प्रभुता मद में मत्त मदनमोहन विसराये।*
*सेनानीकप असुर बिनासन हित हरि आये॥*
*भयो अधिक अपराध अधोक्षज किरपा कीजे।*
*होइ न फिरि अपराध यही वर यदुबर दीजे॥*
*प्रभु परमेश्वर पुन्यप्रद, पालक पूरनकाम हैं।*
*पुरुष पुरातन परावर, पुनि पद पदुम प्रनाम है॥*

## पद

मान मद मेटो मदनमुरारी ।
शुद्ध सत्व मय धाम तिहारो, तव भक्तनि हितकारी ॥१॥
है अदेह धरि देह धरम हित, लीला जग विस्तारी ।
अति अभिमानी जो जग प्रानी, तिनि खल मद संहारी ॥२॥
भूल्यो चरन पाइ सुरपति पद, मम मद बुद्धि बिगारी ।
अब न होहुँ मदमातो माधव, देओ वर बनवारी ॥३॥
मम उद्योग विफल करि ब्रजपति, ब्रज की बिपदा टारी ।
खोलीं आँखि करयो मद मरदन, बार बार बलिहारी ॥४॥

# इन्द्रकृत श्रीकृष्ण स्तुति

इन्द्र उवाच

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं,
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो,
न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥१॥

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता,
लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ।
तथापि दण्डं भगवान् बिभर्ति,
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥२॥

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो,
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे,
मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥३॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिन,
स्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ।
हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया,
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥४॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य,

कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ।
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो,
मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥५॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह,
स्वयम्भराणामुरुभारजन्मनाम् ।
चमूपतीनामभवाय देव,
भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥६॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥७॥
स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥८॥
मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥९॥
त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥१०॥

---

# वरुण द्वारा श्रीकृष्ण स्तुति

( ६५ )

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टि विकल्पना ॥*

(श्री भा० १० स्क० २८ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

*हरिवासर व्रत करयो नन्द जमुना में न्हाये ।*
*असमय लखि चर पकरि, वरुन आलय में लाये ॥*
*जानि कृष्ण तहँ गये वरुन ने आदर कीन्हों ।*
*छिमा प्रार्थना करी मान करि धन बहु दीन्हों ॥*
*इस्तुति करि जलपति कहें, भयो धन्य मम धाम है ।*
*ब्रह्म सच्चिदानन्द प्रभु, चरननि माहिँ प्रनाम है ॥*

भगवान का प्रत्येक मन्वन्तर में एक मन्वन्तरावतार होता है, उसे सभी देवता, असुर, ऋषि मुनि जानते हैं। मन्वन्तर बीत जाने पर देवता, इन्द्र, मनु, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र सब बदल जाते हैं, तब वह अवतार भी बदल जाता है मनु के साथ नियमानुसार दूसरे अवतार होते हैं, सब उन्हें जानते पहिचानते हैं, वे अपनी शक्ति का अधिकार का उपयोग करते हैं, परन्तु उनके

---

* वरुण जी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे भगवन्! आप ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं आप में लोक सृष्टि की कल्पना करने वाली माया नहीं सुनी जाती, ऐसे आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

निश्चित वाहन हैं, उनके आवाहन पर वे उपस्थित रहते हैं, किन्तु कभी कभी स्वयं साक्षात् परब्रह्म गूढ़ रूप से अवतरित हो जाते हैं, उनका कोई नियम नहीं कि अमुक युग अमुक कल्प या अमुक मन्वन्तर में होंगे। जब उनकी इच्छा होती है, चुपके से आजाते हैं, उन्हें केवल उनके अनन्य परिकर वाले तो जानते हैं, शेष सब मोहित हो जाते हैं। श्रीकृष्णावतार ऐसा ही स्वयं साक्षात् परब्रह्म का आकस्मिक अवतार था। इसे देखकर पशु पक्षी, मनुष्य, असुर, देवता तथा कहाँ तक कहें लोकपाल भी विमोहित हो गये। इन्द्र ने उनके आश्रितों को डुबा देने का प्रयत्न किया, पारिजात हरण के प्रसंग में उनसे सम्मुख युद्ध किया। इन्द्र की तो बात ही क्या,स्वयं साक्षात वेदगर्भलोकपितामह ब्रह्माजी भी इस बालग्वाल रूप को देखकर मोह में पड़ गये। भगवान् कोई निमित्त बना कर सभी लोकपालों के लोकों को कृतार्थ करने स्वयं ही वहाँ पहुँच जाते और अपनी पाद धूलि से उस लोक को धन्य बना देते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्द बाबा सदा एकादशी व्रत रहते थे। एक बार एकादशी के दिन उन्होंने निराहार व्रत किया। भोजन न करने से निद्रा भी पूरी नहीं आती, उनकी आँखें आधीरात के पश्चात् ही खुल गयीं। उन्होंने समझा अरुणोदय हो गया है। और सब गोप तो सो रहे थे आप चुपके से धोती लोटा उठा कर यमुना किनारे पहुँच गये। शौचादि से निवृत्त होकर, ज्यों ही वे यमुनाजी में घुसे, संयोग की बात कि समस्त जल के अधीश्वर वरुण जी का वहाँ एक दूत आया हुआ था। उनकी एक आसुरी वेला होती है, उस समय वरुणदूत जल में कहीं कहीं जाया करते हैं, उस वेला में जो जल में घुसता है और वहाँ वरुणदूत होते हैं, तो उसे पकड़ कर वरुणलोक ले जाते हैं। वरुण के दूत ने यह तो समझा नहीं ये परब्रह्म परमात्मा शुद्ध सनातन श्रीकृष्ण

भगवान् के पिता नन्दजी हैं, वह उन्हें पकड़ कर वरुण लोक ले गया। इधर प्रातःकाल जब नन्दजी नहीं आये तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। सर्वज्ञ श्री कृष्ण तो सब जानते ही थे, वे तुरन्त अपने योगबल से वरुणलोक में पहुँच गये। वरुणजी ने, ब्रह्मा तथा इन्द्र की भाँति भूल नहीं की। उन्होंने तुरन्त आसन से उठ कर भगवान् को दंडवत् प्रणाम की तथा विधिवत उनकी पूजा की और हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे।

भगवान् की स्तुति करते हुए वरुणजी कहते हैं—"प्रभो! मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता तथा लोकपाल किसी का भी शरीर क्यों न हो, उसकी सार्थकता इसी में है, कि उसे भगवान् का दर्शन हो जाय। जिस शरीर से भगवत् दर्शन न हो वह शरीर व्यर्थ है। कब से मैं इस वरुणलोक का शासन करता था। नदी, नद, समुद्र तथा, अन्यान्य जलाशयों की रेख देख करता था, किन्तु मेरा वरुण होना तो आज सार्थक हुआ। आज मैं कृतार्थ हुआ। मेरे शरीर की सफलता तो आज सिद्ध हुई कि आप के देव दुर्लभ दर्शन मुझे प्राप्त हो गये।

भगवन्! मेरे समस्त मनोरथ आज पूर्ण हो गये। आपके चरण कमलों का ध्यान करने वाले, उनकी सेवा करने वाले प्राणी इस दुस्तर भवसागर से पार हो जाते हैं, मेरा आज कितना भारी सौभाग्य है, कि जिन चरणारविन्दों का योगिजन एकान्त में बैठकर मन से ध्यान करते हैं, उन्हें कल्पना से हृदय कमल में बिठाकर चिन्तन करते हैं, वे ही चरणकमल प्रत्यक्ष—साक्षात् स्वयं मेरे लोक में पधारे हैं और मैं उनकी अपने हाथों से पूजा कर रहा हूँ

प्रभो! लोक सृष्टि की कल्पना माया के ही द्वारा होती है, उस माया का आप में लेश भी नहीं। आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं, भगवान

हैं, स्वयं साक्षात् परब्रह्म हैं, सर्वत्र व्यापक हैं, और प्राणी मात्र के सुहृद्, सबके आत्मा तथा आधार हैं। मैं आप के पाद पद्मों मे बारम्बार प्रणाम करता हूँ

स्वामिन् ! आप की महिमा को लोकपाल क्या प्रजापति भी नहीं जान सकते। प्रजापतियों के भी प्रजापति, हम,सबके पितामह भगवान ब्रह्मदेवजी भी जब आप की लीला से विमोहित हो जाते हैं, तब हम जैसे अधिकारारूढ़ व्यक्ति जिनका ज्ञान तथा अधिकार अत्यन्त ही अल्प है, आपको भूल जायँ आप की महिमा न जान सकें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? तिस पर मेरे भृत्य तो और भी अधिक अल्पज्ञ हैं। उसी अल्पज्ञता के कारण एक मेरे सेवक ने यह अत्यंत मूढ़ता का कार्य कर डाला, वह आप के प्रभाव को बिना जाने आप के पूजनीय पिताजी को पकड़ लाया। सो, प्रभो ! उसकी ओर से मैं बराम्बार क्षमा याचना करता हूँ, सेवक के अपराध का उत्तरदायित्व स्वामी के ही ऊपर होता है, उसके यश अपयश-जय पराजय का श्रेय तथा अपयश का भागी स्वामी ही होता है, अतः आप इस सेवक की मूढ़ता को क्षमा कर दें।

हे गोविन्द ! आप गौओं के स्वामी हैं, गौओं से अत्यंत प्यार करते हैं, साथ ही आप अत्यंत ही पितृवत्सल हैं, पिता के ऊपर भी आपका अगाध स्नेह हैं। तभी तो आप तुरंत यहाँ पधार गये ये आप के पिताजी समुपस्थित हैं, इन्हें यहाँ हमने बड़े सम्मान पूर्वक रखा है। आप इन्हें अपने साथ ले जायँ। इसी बहाने आप के दर्शन हो गये। मेरा यह लोक कृतार्थ हो गया। मेरे भृत्य की मूढ़ता भी मंगल का कारण बन गयी। आप उस सेवक को तो क्षमाकर ही देंगे। साथ ही मुझ दीन पर भी दया दरसावें। मुझ पर भी अनुग्रह वारि बरसावें। हे चराचर के स्वामी ! आप प्राणी मात्र के साक्षी हैं। हे सब को अपनी ओर आकर्षित करने वाले

श्रीकृष्ण! आपके पाद पद्मों में बराम्बार प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार वरुणजी ने भगवान की स्तुति की तथा भगवान् ने उनकी पूजा ग्रहण की और अपने पिताजी को साथ लेकर ब्रज में लौट आये। यह मैंने अत्यंत संक्षेप में आपसे वरुणजी की स्तुति कही। अब जैसे नारदजी ने ब्रज में आकर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

तुमरी महिमा प्रभो! देव, अज शंभु न जानें।
फिरि मेरो जिह अज्ञ भृत्य कैसे पहिचानें॥
बिनु जाने तब पिता पकरि जमुना तें लायौ।
अघ मंगलमय भयो दरस हम सबने पायौ॥
चरन कमल की भक्ति प्रभु, मोइ दया करि देहि अब।
सेवा जो कछु बनि परै, ताहि कृपा करि लेहि अब॥

पद

आजु मम जीवन सफल भयो है।
जो जगदीश जगतपति पालक, वेदनि अलख कह्यो है॥१॥
भये प्रकट भूभार हरनकूँ, दुख भय भागि गयो है।
नंद यशोदा धनि धनि जिनने, जिह सौभाग्य लह्यो है॥२॥
छिमा करें सेवक की अविनय, अबहूँ नाथ! नयो है।
प्रभु तजि जग जंजाल आसरो, पद पंकजनि लयो है॥३॥

---

## वरुणकृत श्रीकृष्ण स्तुति

वरुण उवाच

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥१॥
नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥२॥
अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥३॥
ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥४॥

# नारद कृत-भगवत् स्तुति ।

( ६६ )

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥*

(श्री भा० १० स्क० ३७ अ० १० श्लो०)

छप्पय

*गमन मधुपुरी श्याम जबहिँ ठानी मन माहीं ।*
*तबहीं कीर्तन करत गये नारद प्रभु पाहीं ॥*
*करि डंडौत प्रनाम विनय इस्तुति अति कीन्हीं ।*
*भावी लीला प्रकट करीं चरननि रज लीन्हीं ॥*
*बोले—"कृष्ण ! कृपा अयन, तजि ब्रज मथुरा जायँगे ।*
*कंसादिक खल मारिकें, सबकूँ सुख पहुँचायँगे ।*

जो भगवान् के अनन्य भक्त हैं, वे भगवान् की लीलाओं के दर्शनों के लिये सदा उत्सुक बने रहते हैं, वे चाहते हैं, भगवान् की हम नित नई लीला देखा करें । भगवान् कैसे खलों का निग्रह करते हैं, कैसे सज्जनों का रक्षा करते हैं, कैसे वे अपने अनन्य

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए नारदजी कहते हैं—"हे कृष्ण । हे अप्रेयात्मन् । हे योगेश्वर । हे जगदीश्वर । हे वासुदेव ! हे अखिलावास ! हे सात्वतों में प्रवर । हे प्रभो । ( आपको बारंबार प्रणाम है )

आश्रित भक्तों को सुख पहुँचाते हैं। जो भक्त भगवान् के पार्षद होते हैं वे सर्वज्ञ होते हैं, उन्हें भूत भविष्य वर्तमान की सभी घटनायें हस्तामलकवत होती हैं। जैसे नाटक के सूत्रधार को तथा उसके साथ रहने वालों को नाटक में आगे क्या होगा सभी संवाद स्मरण रहते हैं। उसे प्रकट करने में भी बड़ा सुख होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब केशी घोड़े का रूप बनाकर व्रज में आया, तब भगवान व्रज की प्रकट लीला का संवरण करके मथुरा जाने की सोच रहे थे। केशी तथा व्योमासुर ये ही अंतिम असुर उद्धार होने वाले असुर थे। महामुनि नारदजी के मन में बड़ी चटपटी लगी कि अब मथुरा की मधुर मधुर लीलायें देखने को मिलेंगी। हर्ष के आवेग में उनसे रहा नहीं गया, वे तुरन्त नंद जी के व्रज में पहुँचे और जाकर भगवान् को दंड प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

भगवान् की स्तुति करते हुए नारदजी कहते हैं—हे प्रभो! आप कृष्ण हैं, कृष्ण हैं। सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं, सबके भवबन्धनों को निवृत्त करने वाले हैं। आप का किसी से भी प्रमाण नहीं दिया जा सकता है। जब आप से कोई बड़ा हो या आपके समान हो तो उससे तो आपकी समता की भी जा सकती है। जब आप के कोई समान ही नहीं तो बड़े होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आप अप्रेय हैं, योगियों के भी ईश्वर हैं और योग के भी ईश्वर हैं। आप निखिल जगत् के स्वामी हैं, वासुदेव हैं, सर्वाधिष्ठान स्वरूप हैं। समस्त यदुवंशियों में श्रेष्ठ हैं, सभी भक्तों के आप स्वामी हैं, जिस प्रकार गीली, सूखी सड़ी गली जितनी भी लकड़ियाँ हैं सब में अग्नि व्याप्त है, उसी प्रकार आप भी चरा

चर जगत में व्याप्त हैं, आप सबके आत्मा हैं, सब की बुद्धियों के साक्षी हैं तथा सबके आश्रय हैं।

आप ही अपनी इच्छा से काल आने पर तीनों गुणों के आश्रय से इस सृष्टि की रचना करते हैं, गुणों के जनक भी आप ही हैं। आप का संकल्प सदा सर्वदा सत्य ही होता है आप अमोघ संकल्प हैं, जो चाहते हैं, वही हो जाता है। आप परमेश्वर हैं। अपने ही गुणों से अपनी ही इच्छा से, अपने ही काल आने पर, अपनी ही प्रकृति में क्षोभ कराके जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं

अपनी ही इच्छा से अपनी ही सामर्थ्य देकर बड़े बड़े दैत्य, असुर राक्षसों को उत्पन्न करते हैं, जब उनके द्वारा धर्म का विनाश होता देखते हैं, तो अपने आप ही अवतार धारण करके उन असुरों का संहार भी कर डालते हैं। इस समय पृथिवी पर बहुत से बलवान् असुर राक्षस, दैत्य तथा प्रमथादि राजाओं के रूप में उत्पन्न होकर धर्म को पीड़ा पहुँचा रहे हैं,अधर्म को बढ़ावा दे रहे हैं, उन्हीं के विनाश के निमित्त तथा धर्म मर्यादा की रक्षा के निमित्त आपने यदुकुल में अवतार लिया है।

अभी अभी जो अश्व का रूप रखकर केशी नामक असुर आया था। इसके त्रास से देवता भी संत्रस्त थे. यह अपनी हिन हिनाहट से दशों दिशाओं को गुञ्जायमान कर रहा था। इससे सभी भय भीत थे। इसे मारकर आपने संसार का बड़ा ही उपकार किया। इसके भय से सुरगण स्वर्ग के सुखों को तिलाञ्जलि देकर

इधर उधर भाग गये थे। आपने इसे खेल खेल में हँसी हँसी में ही मार डाला। अब आप कल तक यहाँ व्रज में क्रीड़ा और करेंगे। कल व्योमासुर का उद्धार आपको और करना है, फिर परसों से तो मथुरा की लीला आरम्भ हो जायगी। जैसे यहाँ आपने बहुत से देवद्वेषी दैत्य दानवों को मारा है, वैसे ही मथुरा में भी आप खल संहार करेंगे।

रजक संहार करके आप चाणूर मुष्टिकादि मल्लों को मारेंगे, कुवलयापीड़ हाथी को पछाड़ेंगे। फिर कंस मामा का अन्त करेंगे। फिर गुरुगृह से जाकर समुद्र में रहने वाले शंखासुर का उद्धार करेंगे। कालयवन, मुर, नरकादि असुरों का संहार करेंगे, स्वर्ग में जाकर इन्द्र के गर्व को हरेंगे, वहाँ से पारिजात लावेंगे, इन्द्र को उसके अभिमान का फल चखावेंगे बहुत-सी क्षत्रिय कन्याओं के साथ अपना पराक्रम दिखा कर, वीर्य शुल्क देकर विवाह करेंगे, राजा नृग जो अनेक वर्षों से ब्राह्मणों के शाप से गिरगिट हो गया था, उसका अपने पाद-स्पर्श से उद्धार करेंगे। स्यमन्तक की चोरी लगने पर आप जाम्बमान रीछके बिल में जायँगे और वहाँ से स्यमन्तक मणि के साथ उसकी पुत्री को भी बहू बनाकर ले आवेंगे, अर्जुन के अभिमान को मेटेंगे, मृतक विप्रपुत्र को निजधाम से लाकर देंगे मिथ्यावासुदेव को मारकर काशी दहन करेंगे, पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र तथा युधिष्ठिर के राजसूय में शिशुपाल का भी वध करेंगे। इन सब लीलाओं को मैं उल्लास के साथ देखूँगा। फिर आप व्रज

मंडल छोड़ कर भागेंगे, द्वारका में जाकर लीला रचेंगे, वहाँ की भी आप की कमनीय क्रीड़ाओं को मैं निहारूँगा। फिर आप अर्जुन के सारथी बनकर काल रूप होकर-कई अक्षोहिणी सेनाओं का संहार करेंगे, उस समय भी तोत्र वेत्र लिये आप के सर्वसंहारी सारथी रूप को देखूँगा।

हे नाथ! आप में माया का लेश मात्र भी अंश नहीं। आप विशुद्ध विज्ञान घन हैं। ऐसे ठोस आनंद से आपने अपने को सजाया है, कि उसमें निरानन्द का प्रवेश ही नहीं। आप परमानन्द स्वरूप हैं, आपके लिये कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं। अलभ्य क्या सभी तो आप द्वारा ही निर्मित हैं, सभी के कर्ता तो आप हैं। आप जो भी इच्छा करते हैं वही हो जाता है, या यों कहिये कि सब हुआ हुआया ही रखा है, केवल आपकी दृष्टि की देर है, जिधर भी जिस भाव से भी आपने दृष्टि दौड़ायी, वहीं वह वस्तु ज्यों की त्यों समुपस्थित दिखायी देती है, आप अमोघ संकल्प हैं। यह गुणप्रवाह रूपी संसार आप के सामने कुछ भी नहीं है, वह नित्य निवृत्त ही है, आप तो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सदा सर्वदा षडैश्वर्य सम्पन्न रहते हैं, आप ह्रास वृद्धि सबसे रहित हैं। हे प्रभो! मैं आप की शरण हूँ, आपका अनुगत भक्त हूँ।

आप सबके स्वामी हैं, सर्वेश्वर हैं, सर्वतन्त्र स्वतंत्र हैं, अपनी माया द्वारा ही विविध भेदों को निर्माण करते हैं। यह जो आपका श्री कृष्ण रूप है, इसे आपने लीला के ही निमित्त—क्रीड़ा के

लिये ही-रख लिया है, आप अरूप होते हुए भी रूपवान् हैं अदेह होते हुए भी देहधारी हैं। आप यदुवंसियों में श्रेष्ठ हैं, आप वृष्णिवंशावतंश हैं तथा सात्वतवंशियों में अग्रगण्य हैं आप वैष्णवों की धुरी हैं, आप अचिन्त्य शक्तिवाले हैं, ऐसे आप नरलीलाधारी गिरधारी वनवारी के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ऐसी स्तुति करके नारद जी स्वेच्छा से विचरते हुए अन्य स्थान को चले गये। इधर भगवान् से जिन जिन लीलाओं का संकेत नारद जी ने किया था उन्हें करते हुए अपने आश्रित भक्तों को सुख दिया। यह मैंने आपसे श्रीनारदकृत श्रीकृष्ण स्तुति कही। अब मथुरा जाते समय मार्ग,में यमुना किनारे मध्यान्ह स्नान करते हुए जैसे अक्रूरजी को भगवान् के दर्शन हुए और उन्होंने जैसे भगवान् की स्तुति की, उस स्तुति प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आप सब सावधानी के साथ श्रवण करने की कृपा करें।

### छप्पय

फेरि द्वारका जाइ करें लीला सुखकारी ।<br>
पार्थसारथी बनें उभय सेना संहारी ॥<br>
मायातें रचि जगत, करो पालन संहारन ।<br>
क्रीड़ा के ही हेतु, करो मानुष तन धारन ॥<br>
परमानन्द स्वरूप प्रभु, हैं विशुद्ध विज्ञान घन ।<br>
बारबार बिनती करूँ, चरन कमल में रमहिं मन ॥

## पद

कृष्ण करुनेश कृपा के सागर।
यदु मधु वृष्णि वंशवर भूषन, कृपासिन्धु करुनाकर ॥१॥
वृन्दावन में असुर सँहारे, केशी, बक व्योमासुर।
अघ प्रलम्ब धेनुक वृषभासुर, पठये सबई यमपुर ॥२॥
अब मथुरा में जाइ करो कुल, काज जगत हित सुखकर।
मारि कंस चाणूर आदि खल, करम करो अति दुष्कर ॥३॥
रनकूँ छोड़ि द्वारका भागो, विश्वनाथ विश्वम्भर।
करि विवाह बहु वंश बढ़ाओ, फिरि हरि नासो निजकर ॥४॥
सबके ईश स्वयं जगदीश्वर, सरवेश्वर अति मनहर।
चरन कमल में मन रमि जावे, देहिँ मुदित ह्वै यह वर ॥५॥

# नारदकृत कृष्ण स्तुति

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥१॥
कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥२॥
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥३॥
आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ।
तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥४॥
स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।
अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥५॥
दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः ।
यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥६॥
चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥७॥
तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च ।
पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥८॥
उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।
नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥९॥

स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ।
मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१०॥
पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्च दीपनम् ।
दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥११॥
यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान् ।
कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥१२॥
अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ।
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥१३॥

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया,
समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम् ।
स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमाया,
गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥१४॥
त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया,
विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं,
नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥१५॥

---

# श्री अक्रूर कृत भगवत्स्तुति (१)

( ६७ )

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुम्,
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादर विन्द कोशात्,
ब्रह्माविरासीद् यत एव लोकः ॥

( श्री भा० १० स्क० ४० अ० १ श्लो० )

छप्पय

*राम श्याम रथ चढ़े चलायो रथ सुफलकसुत ।*
*जमुना में अक्रूर नहाये निरख्यो अद्भुत ॥*
*नारायन भुज चारि शेष सैया पै सोवें ।*
*पार्षद पूजा करें पदुम पद पद्मा धोवें ॥*
*हक्के बक्के से भये, इस्तुति पुनि करिवे लगे ।*
*पुरुष पुरातन प्रकृति पति, अज प्रकटे जब प्रभु जगे ॥*

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए देवर्षि नारद कह रहे हैं—प्रभो मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । आप सभी कारणों के कारण हैं, आप नारायण हैं, आदि पुरुष तथा अव्यय हैं । आपकी नाभि से ही कमल उत्पन्न होता है, उस कमल कोश से ही ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं जिनके द्वारा यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है ।"

भगवान् एक हैं और वे ही अनेक रूपों में भासित हो रहे हैं। उन अनामी का कोई नाम न होने पर भी सभी नामों की सार्थकता वे ही कर रहे हैं। वे एक होकर भी अनेक बन गये हैं,अद्वैत होने पर भी द्वैत हो गये हैं। निर्गुण होने पर भी सगुण हो गये हैं, निराकार होने पर भी साकार से प्रतीत होते हैं। उन्हीं एक की ऋषिगण भगवत् भक्त भाँति भाँति से स्तुति करते हैं, क्योंकि एक मात्र स्तुति करने योग्य श्यामसुंदर श्रीहरि ही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कंस की आज्ञा से रामश्याम को रथपर चढ़ाकर अक्रूरजी नंदजीके ब्रजसे मथुराजी को चल दिये। बीच में उन्हें समस्त अघनाशिनी श्रीकृष्ण प्रिया कालिन्दी हिलोरें मारती हुई दिखायी दीं। रथ को एक सघन वृक्ष के नीचे खड़ा करके वे मध्याह्न कृत्य करने–अन्हिक कर्म से निवृत्त होने–यमुनाजी के किनारे पहुँचे। संकल्प करके ज्योंही उन्होंने यमुनाजी में डुबकी लगायी और जप करने लगे कि उन्हें राम श्याम अपने समीप बैठे हुए दिखायी दिये। रथ पर देखा तो वे वहाँ भी ज्यों के त्यों बैठे हैं, फिर डुबकी मारी कि अब के उन्हें शेषशायी चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। अब तो वे समझ गये, यह सब मेरे सर्व समर्थ श्री प्रभु की ही लीला है, अतः वे हाथ जोड़कर गद्गद कंठ से भगवान् की स्तुति करने लगे।

भगवान् की स्तुति करते हुए अक्रूरजी कह रहे हैं—"भगवन्! इस दृश्य जगत् के आप प्रपितामह हैं, कारण कि सबके पितामह तो श्री ब्रह्माजी कहे जाते हैं, क्योंकि हम सब अत्रि, कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाजादि ऋषियों की सन्तानें हैं। ये ऋषिगण ब्रह्माजी के पुत्र हैं और श्री ब्रह्माजी आपके तनय हैं। आप साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं। जल ही आपका अयन–रहने का स्थान है। जल में से ही कमल उत्पन्न होता है, आपकी नाभि से

एक कमल उत्पन्न हुआ, जब तक वह विकसित नहीं हुआ खिला नहीं तब तक तो वह बढ़ता ही गया, जब खिल गया, तो जैसे कमल से भ्रमर निकल कर गुंजार करता है उसी प्रकार आप की नाभि वाला कमल जब विकसित हुआ तो उससे चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हो गये। ये ब्रह्मा ही सब सृष्टि के कारण हैं आप उन ब्रह्मा के भी कारण हैं, किन्तु आप का कोई भी कारण नहीं है। आप तो सभी कारणों के कारण हैं। आप अविनाशी हैं, आदि पुरुष हैं, जीवों के निवास स्थान हैं, ऐसे नारायण रूप प्रभु के पाद पद्मों में प्रणाम है।

प्रभो ! जगत् के जितने कारण हैं, सब अंग हैं आप अंगी हैं। जगत् का कारण पृथिवी है, जल है, अग्नि है, वायु है, आकाश है, इन पंच महा भूतों के अतिरिक्त महत्तत्व है, माया प्रकृति है, पुरुष है। इन्द्रियों को प्रवृत्त करने वाला मन है, कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इन पंच ज्ञानेन्द्रियों के शब्द, रूप, रस गंध और स्पर्श ये पाँच विषय हैं, इन बाह्य करण तथा अन्तः करणों के अधिष्ठातृ देव हैं ये सभी जगत् के कारण हैं, इन सभी के समुच्चय से संघात से सृष्टि होती है, इन सब के भी कारण आप हैं, ये सब आप विराट पुरुष के अंग प्रत्यंग हैं। ऐसे सर्व कारण आप प्रभु के पाद पद्मों में प्रणाम है।

स्वामिन् ! जितने ये पंच भूत, इन्द्रियाँ, अन्तः करण, विषय तथा अधिष्ठातृ देव हैं, ये स्वतः चाहें कि आप के स्वरूप को जान लें तो संभव नहीं। कारण कि ये सब के सब अनात्म हैं, जड़ हैं एक मात्र आप ही सब के आत्मा हैं, चैतन्यघन सत्य स्वरूप तथा आनंद रूप हैं। औरों की तो बात पृथक् है, सम्पूर्ण जगत् के पितामह सबको उत्पन्न करने वाले वेदगर्भ चतुरानन ब्रह्मा भी आप के गुणातीत रूप को सम्यक् प्रकार नहीं जान सकते, क्यों

कि ब्रह्माजी भी तो माया के गुणों से युक्त हैं, वे भी रजोगुण से सृष्टि की रचना करते हैं, कर्म करने में लगे रहते हैं, सृष्टि कार्य में व्यस्त हैं । आप माया के स्वामी होने पर भी मायिक गुणों से सदा सर्वदा रहित हैं। आपको वही जान सकता है जिसे आप जनाना चाहें, आप की अनुग्रह से ही आपके स्वरूप का बोध हो सकता है, नहीं तो मायिक गुणों में फंसा प्राणी आप मायातीत को कैसे जान सकता है।

प्रभो ! आप एक हैं, भिन्न भिन्न संप्रदाय के मुमुक्षु भिन्न भिन्न उपायों से आप को ही प्राप्त होते हैं। जैसे भिन्न भिन्न मार्गों से चल कर नदियाँ समुद्र में ही जाकर मिलती हैं, कहीं से भी चलें कैसी भी चाल से चलें सब का पर्यवसान समुद्र में ही है। इसी प्रकार योगीगण चित्त वृत्तियों के निरोध द्वारा आप को ही प्राप्त करते हैं योगी गण सूर्याधिष्ठित स्वरूप सहित अध्यात्म्य भाव से, चक्षुअधिष्ठित स्वरूप सहित अधिभूत भाव से तथा आदित्य में दिखाई देने वाला हिरण्यमय पुरुष स्वरूप से अधिदैत भाव से आप परम पुरुष परमात्मा का ही यजन करते हैं। अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव सभी रूपों में एक आप ही उपास्य देव हैं। इस प्रकार योगी जन विविधि योग क्रियाओं द्वारा विविधि भाँति से धारणा ध्यान समाधि द्वारा आपका ही यजन करते हैं।

जो कर्म काण्डी हैं, वेद में बताये कर्मों द्वारा ही सिद्धि लाभ करना चाहते हैं, वे ऋक, यजुर्वेद और साम में बतायी हुई विधियों के द्वारा आपकी उपासना करते हैं, सायं प्रातः अग्निहोत्र के द्वारा दार्श पौर्णिमा चातुर्मास्य पशु तथा सोमयज्ञों द्वारा आपकी अर्चना करते हैं। वैसे देखने के लिये वे इन्द्र वरुण कुवेरादि देवताओं को आहुति देते हैं, वे तत् तत् नामों वाले देवताओं के भिन्न भिन्न रूपों की भी कल्पना करते हैं "वज्रहस्तो पुरंदरः"

जिसके हाथ में वज्र हो वह इन्द्र। इस प्रकार भिन्न भिन्न नाम रूपों वाले विभिन्न देवताओं का पूजन करते हुए भी वास्तव में वे उपासना आप की ही करते हैं। उन नाम और रूपों से आप को ही बलि प्रदान करते हैं कुछ ज्ञानी लोग सभी नित्य नैमित्तिक-यज्ञों का परित्याग करके निराग्नि बनकर–कर्मसन्यास करके, सभी प्रपञ्चों से पृथक रह कर, अत्यंत शान्त भाव से विवेक वैराग्य के द्वारा सदा आप का ही ध्यान करते रहते हैं। सदा सर्वदा आत्म स्वरूप में ही अवस्थित रहते हैं। वे ज्ञान स्वरूप आपका ही ज्ञानयज्ञ द्वारा यजन करते हैं। उन्हें बाह्य कर्म काण्ड की आवश्यकता नहीं होती, वे सद् असत् के विचार द्वारा ही असत् जगत प्रपंच का परित्याग करके सच्चिदानन्द स्वरूप आप के ही भाव में सदा भावित रहते हैं। इस प्रकार कर्म काण्डी कर्म मार्ग द्वारा ज्ञान मार्गी ज्ञान मार्ग द्वारा आपकी उपासना करते हैं।

हे प्रभो! जो उपासक हैं, भगवत् भक्ति करते करते जिनका अन्तः करण विशुद्ध बन गया है, जो वैष्णव संस्कारों द्वारा संस्कृत हो चुके हैं, वे आप की बतायी हुई विधियों से आपकी उपासना करते हैं जो वैदिक विधि से उपासना करते हैं, वे यज्ञों में इन्द्रादि देवों को आपके अंगभूत मान कर अंगी आपकी ही पूजा करते हैं, स्रुक्, स्रुव और चमस आदि यज्ञ पात्रों में तथा यज्ञ की समस्त विधियों में आपके ही अंग उपाङ्गों की कल्पना करते हैं, अनेक रूपों को मानते हुए भी उन्हें एक आप के अंग समझते हैं, जो

पाञ्चरात्र आदि तन्त्रोक्त विधि से उपासना करते हैं, वे सब भी धन्यवाद के पात्र हैं वे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहों के रूप में भी आपकी ही पूजा करते हैं और एक केवल नारायण रूप से भी आप की ही उपासना में तन्मय होकर आप की भक्ति करते हैं।

कुछ लोग पाशुपत तन्त्र में बतायी विधि से आपकी ही पूजा करते हैं। आपने स्वयं ही आचार्य रूप से शिव बनकर शैव-पाशुपत आगम का उपदेश दिया है। शैवागम के अनेक आचार्य हुए हैं। जिन्होंने एकमात्र शिव को ही आराधनीय बताया है। शैवमतावलम्बी उन्हीं उपदेशों द्वारा शिवरूप से आप की ही उपासना करते हैं। जो शाक्त हैं, वे शक्ति रूप से आप को ही भजते हैं, गाणपत्य गणपति रूप में आपको ही भजते हैं। शौरगण सूर्य रूप से आपकी ही उपासना करते हैं। इनके अतिरिक्त जो लोग भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि अनेक रूपों से आपकी ही उपासना करते हैं, देखने में वे भेद बुद्धि वाले प्रतीत होते हैं। उनके उपास्य देव के नाम रूप भिन्न-भिन्न हैं, तथापि आपतो सर्व देव मय हैं न ? जैसे कहीं भी पानी छोड़ दो वह इर-फिरकर समुद्र में ही पहुँच जायगा, इसी प्रकार किसी भी देवता को लक्ष्य करके पूजा की जाय, वह मिलेगी आपको ही, क्योंकि पूजा के एकमात्र अधिकारी तो आप ही हैं, जैसे नदियाँ पर्वतों से, तालाबों में से तथा अन्य जल स्रोतों से निकल कर बहती हैं, मेघ के जल से वे विस्तार को प्राप्त होती हैं, छोटी नदियाँ बड़ी नदियों में

जाकर मिल जाती हैं, किन्तु सभी नदियों का जल जायगा समुद्रमें ही। चाहें वह नदी प्रत्यक्ष जाकर समुद्र में मिले अथवा परम्परा से मिले सबकी अंतिम गति समुद्र ही है, इसी प्रकार चाहें कोई प्रत्यक्ष आपकी पूजा करे या परम्परा से करे वह पूजा पहुँचेगी आपको ही। समस्त उपासना मार्ग सब अन्त में आपको ही प्राप्त कराते हैं।

प्रभो! छोटे बड़े, ऊँच नीच जितने भी जीव हैं, सब त्रिगुण के अन्तर्गत हैं। कोई सात्विक जीव है, कोई राजस्, कोई तामस और कोई मिश्रित। जड़ चैतन्य, स्थावर जंगम सब तीनों ही गुणों के अन्तर्गत हैं, समस्त मायिक जीव तीनों गुणों में ही ओत-प्रोत हैं और ये सत्व, रज तथा तम आपकी ही त्रिगुणमयी माया के गुण हैं, ब्रह्मा से लेकर परमाणु पर्यन्त सभी इन गुणों में आबद्ध है, किन्तु एक आप ही ऐसे हैं जो इन गुणों से सर्वथा पृथक् हैं। इसलिये हे सर्वात्मा! हे सबके साक्षी! हे त्रिगुणातीत प्रभो! आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार अक्रूरजी ने भगवान् को सर्वात्म रूप से स्तुति की, अब वे जैसे विश्व रूप भगवान् की स्तुति करेंगे उसे मैं आगे कहूँगा।

### छप्पय

भूत, करन, सुर, प्रकृति, पुरुष सब तुमही स्वामी।<br>
जानें अज नहिँ भेद सर्वमय अन्तरयामी॥<br>
जोगी करिकें जोग करम करि करमी ध्यावें।<br>
ज्ञानी करकें ज्ञान उपासक तुमकूँ पावें॥<br>
शाक्त शक्ति शिव शैव कहि, पूजें तुमही कूँ प्रभो।<br>
जीव त्रिगुन में सब फँसे, गुनातीत तुम हो विभो॥

## पद

ध्येय तुमही हो सबके श्याम ।
जगकारन, जगमय जगदीश्वर, जगन्नाथ जगधाम ॥१॥
जग के जीव भेद नहिँ जानें, तुम निरगुन निष्काम ।
जोगी जोग जुगति करि ध्यावें, पावें पूरन काम ॥२॥
करमकांड करि जज्ञ रूप में, तुम ही हो घनश्याम ।
ज्ञानी ज्ञान यज्ञ तैं ध्यावें, तुमरो रूप न नाम ॥३॥
वैष्णव विधि विधान तैं पूजें, तुमरे रूप ललाम ।
सर्व देवमय सर्व रूपमय,तुमहि श्याम सियराम ॥४॥
जैसे नदियाँ निकरि गिरिनितैं, जावें जलनिधिठाम ।
तैसे तुमकूँ पावें प्रभु जी, विविध रूप तैं राम ॥५॥

# अक्रूर कृत भगवत् स्तुति (२)

[ ६८ ]

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविपक्त दृष्टये
सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मने ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४० अ० १२ श्लो०)

छप्पय

*अगिनि कह्यो मुख चरन भूमि नभनाभि नेत्र रवि।*
*कान दिशा शिरस्वरग इन्द्र भुज कोख सलिल कवि॥*
*वायु प्रान तरुरोम मेघकच नख गिरि हड्डी।*
*हैं निमेष निशि दिवस शिश्न अज वीरज वृष्टी॥*
*अगनित जग सुखतैं बसैं, गूलर फल में जीव ज्यों।*
*परमपुरुष प्रभु पेट में, बसैं निखिल ब्रह्मांड त्यों॥*

---

* अक्रूर जी भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—"प्रभो! मैं आपको नमस्कार करता हूं, आप सर्वरूप हैं, सब की बुद्धियों के साक्षी हैं, आपकी दृष्टि निर्लिप्त है, देवता, मनुष्य तथा तिर्यगादि योनियों में प्रवृत्त होने वाला यह गुणप्रवाह अविद्याकृत है।

हम संसारी लोगों की बाह्यदृष्टि है। हम बाहर से दिखायी देने वाले घट, पट, अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज प्राणियों को ही देखते हैं। इन सब में समान रूप से ओत प्रोत उन प्रभु को नहीं निहारते इसीलिये हमें बारबार जन्मना मरना पड़ता है। यदि अणु परमाणु में व्याप्त हम उन्हीं परमात्मा को देखें तो फिर यह संसार चक्र सदा के लिये समाप्त हो जाय। प्रार्थना का अर्थ यही है, हमारी दृष्टि जो व्यष्टि में उलकी हुई है, वह समष्टि में फँस जाय तदाकार हो जाय। सर्वत्र एक ही तत्व दिखायी देने लगे।

अक्रूरजी भगवान् की स्तुति करते हुए आगे कहते हैं—"भगवन ! जिन तीन गुणों से यह चराचर जगत् बना है, उन्हीं गुणों मे समस्त छोटे बड़े जीव बँधे हुए हैं। और की तो बात ही क्या इस चराचर विश्व को बनाने वाले ब्रह्माजी भी इस गुण प्रवाह से बचे नहीं हैं। केवल एक आप ही ऐसे हैं, जो इन गुणों से पृथक् हैं, गुणातीत हैं, निर्गुण, निर्लेप हैं। फिर भी यह जगत् आपका ही रूप है। सबके अन्तःकरण के एकमात्र आप ही साक्षी हैं आप ही इस गुण प्रवाह से अलिप्त हैं, शेष चाहें पशु पक्षी हों रेंगने वाले चलने वाले हों या देवता ही क्यों न हों सभी इस प्रवाह में आबद्ध हैं।

आप सर्वरूप तथा सर्वसाक्षी हैं। जितना भी पसारा है, सभी आपके अंग उपाङ्ग हैं। यह जो वैश्वानर सबको भक्षण कर जाता है, यही आपका मुखारविन्द है। सबकी सब बातों को सहन करने वाली सब को धारण करने वाली पृथिवी ही आप के चरणारविन्द हैं। सबको प्रकाशित करने वाले सदा सर्वदा सब को देखते रहने वाले सूर्य ही आपके नेत्र हैं। सब को अवकाश देने वाला आकाश ही मानों आपके शरीर का मध्य भाग

नाभि है। ये दशों दिशायें ही आपके कान हैं। सबसे शीर्ष्ण-लोक स्वर्ग ही आपका शीर्ष स्थानीय अंग शिर है। प्रभो! जितने देवताओं के स्वामी हैं वे ही मानो आपकी भुजायें है। जिसमें अन्न पान भर जाता है, वे उदर की कोखें ही मानो समुद्र है सब को जिवाय रखने वाला वायु ही मानों आपकी प्राण शक्ति हैं। ये जितने बड़े बड़े वृक्ष है वनस्पति हैं, तथा फल लग कर पक जाने पर गिर जाने वाली जव धान्य आदि ओषधियाँ हैं वे ही मानो आप विराट के अंग मे होने वाले रोम है। ये काले काले जल बरसाने वाले मेघ ही मानों आपके सिर के काले घुंघराले केश कलाप हैं। ये बड़े बड़े शिखरो वाले पर्वत ही आपके श्री अंग की हड्डियाँ हैं। छोटे छोटे पर्वत ही मानों आपकी उँगलियों के नख हैं। रात्रि हो जाना, दिन हो जाना फिर रात्रि हो जाना फिर दिन हो जाना, यह जो दिन रात्रि का उत्थान पतन है वही मानो आपका निमेष और उन्मेष है। पलकों का खोलना और मीचना है। प्रजापति आपके शिश्नस्थानीय है। जीवन रूप जल जो बरसता है वही मानो आपका वीर्य है। इस प्रकार आप जगन्मय हैं। ये समस्त चराचर जीव आपके उदर मे सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं जैसे अनन्त अगाध अपार समुद्र में असंख्यों छोटे बड़े जीव सुखपूर्वक निवास करते हैं, उनके कारण समुद्र को तनिक भी क्षोभ नहीं होता अथवा जैसे गूलर के फल मे असंख्यों भिनगे भर रहते है, गूलर का कुछ भी नहीं बिगड़ता, इसी प्रकार अगणित ब्रह्माण्ड आपके उदर में सुखपूर्वक रह रहे हैं। आप पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। उनके कारण लेशमात्र भी आपको क्षोभ नहीं होता। आप ज्ञान स्वरूप परम-पुरुष परमात्मा में ये सब व्यवहार हो रहे हैं। आप सर्वथा इनके व्यापारों से निर्लिप्त हैं। सुख दुख से परे हैं आनन्द स्वरूप हैं।

प्रभो ! यदि संसार में कर्म बन्धन में बँधे मायिक जीव ही सब रहें तो यह जगत् रौरवनरक से भी बढ़कर दुःखद हो जाय। क्योंकि तीनों गुणों के कार्य संसार बन्धन को सुदृढ़ करने वाले होते हैं। आप गुणातीत होकर भी कभी कभी अवनि पर अवतरित होते हैं। भक्तों को सुख देने वाली सरस सुंदर अनु मधुर क्रीड़ायें करते हैं, उन्हें जो भाग्यशाली स्वयं देखते हैं, उनमें सम्मिलित होते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं, जो देखने नहीं पाते वे पीछे उन लीलाओं को गाते हैं गा गाकर दूसरों को सुनाते हैं जो उन्हें सुनते सुनाते हैं वे शोक रहित होकर आनन्द मग्न बन जाते हैं वे ही गुणातीत आपकी गुणमयी लीलाओं केवल भाव से निःसंग और निर्मुक्त बन जाते हैं, आप मानवशरीर में ही प्रकट होते हों भी बात नहीं। कभी जलचर जीव बनजाते हैं,कभी नभचर कभी स्थलचर और कभी वनचर भी बन जाते हैं, कभी क्षत्रिय बन के दुष्ट दमन करते हैं तो कभी विप्र बनकर भी संहार करने लगते हैं। ब्राह्मण बनकर भीख भी माँगते हैं आपकी महिमा अपरम्पार है।

प्रभो ! आप एक बार राजा सत्यव्रत पर कृपा करने के लिये तथा पृथिवी के बीजों की और सप्तर्षियों की रक्षा करने के लिये उन्हें प्रलय पयोधि से बचाने के लिये अगणित योजन लम्बे चौड़े मत्स्य बन गये थे। जिससे आपने सप्तर्षियों का तथा राजा सत्यव्रत की रक्षा की ऐसे प्रलय पयोधि में नरी लेकर तैरने वाले कमनीय क्रीड़ा करने वाले कृष्ण आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

भगवन् ! सृष्टि के आदि में ही मधु और कैटभ उत्पन्न होकर आपको डराने धमकाने लगे। ब्रह्माजी को त्रास देने लगे तब आपने हयग्रीव अवतार धारण किया। ग्रीवा से ऊपर क

भाग तो हय-घोड़े का सा था और नीचे का भाग मनुष्य जैसा था, आपने मधु कैटभ को मारकर ब्रह्माजी को अभय बना दिया। ऐसे आप मधुकैटभ संहारी को बारम्बार नमस्कार है।

स्वामिन! जब आपने देवताओं को समुद्र मंथन की आज्ञा दी और वे दैत्यों के सहित मंदराचल से क्षीर सागर को मथने लगे तब निराधार मंदराचल समुद्र में कैसे स्थिर रह सकता था, वह समुद्र में डूबने लगा, तब आपने बड़े भारी आकार वाले कछुए का रूप रख कर डूबते हुए मंदराचल को ऊपर उठा लिया और समुद्र मंथन पर्यन्त उसका अवलम्ब बन कर—उसके आधार होकर समुद्र में बैठे रहे, ऐसे कूर्मरूप आप प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

जब असुरराज हिरण्याक्ष पृथिवी को पाताल लोक ले गया, तब आप वराहरूप रख कर पृथिवी को वहाँ से साथ लेकर ऊपर आये और पृथिवी को जल के ऊपर रख दिया साथ ही उस असुरराज को परलोक भी पठा दिया ऐसे वाराहरूप रखने वाले आप परमात्मा के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे भक्तवत्सल! जब आपके अनन्य भक्त प्रह्लाद को उसका पिता असुरराज हिरण्यकशिपु अत्यंत त्रास देने लगा, बारम्बार आपका अपमान करने लगा, तो आपने अपने अपमान की तो उपेक्षा कर दी, किन्तु भक्त के दुःख के कारण आपका नवनीत के समान कोमल हृदय पसीज उठा, आप अपने भक्त के दुःख दूर करने के निमित्त नृसिंह बन गये। ऐसा अद्भुत भयंकर

रूप बना लिया जो आजतक न कभी सुना था और न कभी देखा था। हे साधुओं को अभय प्रदान करने वाले प्रभो! आप उस नरसिंह रूप से हिरण्यकशिपु को मार कर भक्त के भय को दूर कर दिया ऐसे आप भयहारी के पाद पद्मों में प्रणाम है।

हे देव! जब राजा बलि ने तीनों लोकों को जीत लिया और देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया। तब आपने कपट वामन वेष बना कर बलि के द्वार पर भीख माँगी और उसके हाँ कहने पर अपने पगों से तीनों लोकों को नाप लिया। ऐसे वामनरूप प्रभु को वारम्बार नमस्कार है।

जब क्षत्रिय रूप से अवनि पर अनेकों असुर उत्पन्न हो गये। तब उन सबका संहार करने के लिए आप परशु लेकर, उनका जड़ मूल से नाश करने के निमित्त, परशुराम रूप से उत्पन्न हुए और अपने तीक्ष्ण धार वाले परशु से क्षत्रियों के समूह रूप वन को काट कर पृथिवी के भार को हलका कर दिया। ऐसे परशुराम रूप प्रभु के पाद पद्मों में प्रणाम है।

हे सीता सर्वस्व! जब रावणादि—राक्षस अपने अत्याचारों से साधुओं को कष्ट देने लगे तब आपने राघवेन्दु बन कर तम रूप उन असुरों को मार भगाया। ऐसे रावणारि राघव को हमारा वारम्बार नमस्कार है।

प्रभो! भक्तों को सुख देने के निमित्त सात्वतों के आनन्द को बढ़ाने के निमित्त आप वासुदेव रूप से अवतरित हुए। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप से चतुर्व्यूह बन कर भक्ति को बढ़ाने वाले आप परमेश्वर के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे असुरारी ! जब असुर नाना रूपों में प्रकट होकर कपट यज्ञ करके अधर्म को बढ़ाने लगे, तब आपने उन कपट यज्ञों को बन्द करने के निमित्त बुद्ध रूप से अवतार लिया और दानवों को मोहित करके उन्हें उन कार्यों से विरत किया। ऐसे बुद्ध भगवान को बारम्बार नमस्कार है।

हे युग प्रवर्तक ! प्रत्येक द्वापर के अन्त में जब कलियुग आता है; तब कलि के अन्त में जितने शासक हैं सब म्लेच्छों के समान आचरण करने वाले बन जाते हैं, सर्वत्र अधर्म का साम्राज्य हो जाता है. समस्त प्रजा पापाचरण में प्रवृत्त हो जाती है। उस समय आप कल्कि रूप से अवनि पर अवतीर्ण होते हैं और उन दस्युधर्मी म्लेच्छों को मारकर पुनः सत्ययुग की स्थापना करते हैं, फिर से धर्मचक्र को सुचारु रूप से प्रवर्तित करते हैं। ऐसे कल्कि रूप आप परम पुरुष के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों ! इस प्रकार अक्रूर जी ने भगवान् की स्तुति की। अब आगे जिस प्रकार वे अपनी दीनता प्रकट करते अपनी स्तुति का उपसंहार करेंगे वह कथा प्रसंग में आगे कहूँगा। अक्रूर जी की स्तुति अत्यंत ही भक्ति भाव पूर्ण तथा विनय से परिपूर्ण है आप सब इसे सावधानी से श्रवण करें।

### छप्पय

क्रीड़ा तनु धरि करो ताहि नर सुनि सुख पावें।<br>
कच्छ, मच्छ, हयग्रीव, विप्र, नरहरि बनि जावें॥<br>
परशुराम, श्रीराम, रामबल, बासुदेव वर।<br>
चतुरव्यूह बनि कल्कि बुद्ध पाखंडयशहर॥<br>
माया मोहित जीव ज्यों, मैं मेरी में फँसि मरें।<br>
स्वपन सरिस परिवार धन, फँस्यो मोहमें प्रभुहरें॥

## पद

आपु जगवनि जगपति कहलाओ ।
सरव भूत मय प्रज्ञा माखी, हरि निरलिप्त कहाओ ॥ १॥
सरव देव मय अंगभूत गन, जल वीरज वनि आओ ।
रोम रोम ब्रह्माण्ड तिहारे, सबकूँ नाच नचाओ ॥ २ ॥
क्रीड़ा हित पृथिवी पै प्रकटो, लीला मधुर रचाओ ।
तिनहिँ सुमिरि सुख पावैं सबजन, तिनिभव पार लगाओ ॥ ३ ॥
मछली बनिकें प्रलय सलिल में, जगके बीज बचाओ ।
मधु कैटभ दैत्यनि के वध हित, हयग्रीवा बनि जाओ ॥ ४ ॥
कछुआ बनि मंदरगिरि धारो, सागरकूँ मथवाओ ।
बनिवराह पृथिवी उद्धारो, तापै जीव बसाओ ॥ ५ ॥
हिरनकशिपु को फारि उदर नर-हरि बनि भक्त जिताओ ।
वामन बनि बल छलिकें सुरपति, त्रिभुवन राज दिवाओ ॥ ६ ॥
रामरूपतैं फरसा लैकें, यमपुर नृपनि पठाओ ।
वासुदेव प्रद्युम्न रामबल, अनिरुध रूपधराओ ॥ ७ ॥
बुद्ध रूप धरि दानव मोहे, छलमख बन्द कराओ ।
कल्कि बनो कलि अन्त होहि जब, फिरितैं सतजुग लाओ ॥ ८ ॥
जीव चराचर मायामोहित, तिनि भवभीति भगाओ ।
मैं मेरी में फँस्यो अधम प्रभु भ्रम अज्ञान मिटाओ । ९ ॥

# अक्रूरकृत भगवत् स्तुति ( ३ )

( ६६ )

भगवन् जीव लोकोऽयं मोहितस्तव मायया।
अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्म वर्त्मसु ॥

( श्री भा० १० स्क० ४० अ० २३ श्लो० )

छप्पय

*तृन सिवार तैं ढके सलिल तजि मृगतृष्णा हित।*
*भटके ज्यों जग जीव दीन बनि नित नित इत तित॥*
*चरन शरन हरि लई कृपा करि दरसन दीन्हें।*
*भक्ति हिये में दई तबहि प्रभु जल में चीन्हें॥*
*काल करम प्रेरक परम, पुरुप प्रकृति पर परावर।*
*बार बार बन्दौं विभो, विश्वम्भर भव दुःखहर॥*

भगवान् जब कृपा करें, जब जीव को वे अपना करके वरण करें, तभी वे योग माया की यवनिका को हटा कर निज जनके सम्मुख प्रकट होते हैं। जीव का पुरुपार्थ तो निमित्त मात्र है, नगण्य है, केवल उसी के सहारे कुछ होने जाने का नहीं। जीवन में जब हार्दिक दीनता आजाय, हृदय सर्वात्म भाव से समर्पित हो

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए अक्रूरजी कह रहे हैं—"हे भगवन्! यह जीवलोक तुम्हारी माया से मोहित है और कर्म मार्ग में यह मैं हूँ। यह मेरा है ऐसे अज्ञान के आग्रह से भटक रहा है।

जाय, तो तुरन्त भगवान् अपना लेते हैं, अपने दुर्लभ दर्शन दे देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अक्रूर जी स्तुति करते हुए आगे कह रहे हैं—"यह अज्ञानी जीव कर्म मार्ग में भटक रहा है, रात दिन कर्म करने में ही व्यस्त रहता है, कर्म रजोगुण से ही होते हैं। रजोगुण बिना अहं भाव के होता नहीं। जहाँ अहंता है वहाँ ममता है। मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ लोग मुझे समझते नहीं। मेरा कितना प्रभाव है मेरे पास कितनी प्रचुर मात्रा में सुखोपभोग की सामग्रियाँ हैं, इसी असत् आग्रह के कारण वह परमार्थ से च्युत हो जाता है। अच्छे बुरे कर्म करता है, उनके फल भोगने को ऊँच नीच योनियों में जन्म लेता है फिर कर्म करता है, फिर जन्म लेता है, यों इस संसार में फँस कर आपके पाद पद्मों से विमुख बन जाता है।

प्रभो! जिस प्रकार अन्य बद्ध जीव कर्म मार्ग में भटक रहे हैं, उसी प्रकार मैं भी भटक रहा हूँ, उन भटकने वालों में से मैं भी एक अज्ञ जीव हूँ। मुझे भी यह अभिमान है, मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, कुलीन हूँ, सरूपवान् हूँ, स्वस्थ हूँ। मेरे इतने पुत्र हैं, अमुक आज्ञाकारी हैं, इनके लिये मुझे यह करना है वह करना है। यह मेरा घर ही है स्वच्छ है, सुंदर है, आकर्षक है वैभव से पूर्ण है, दानपति की प्रतिष्ठा के अनुरूप है। इतनी मेरी स्त्रियाँ हैं, अमुक पतिव्रता है, अमुक सुंदरी है, सुशीला है। मुझे किसी बात की कमी नहीं। मेरे पास इतना धन है, इतना और हो जाय, तो मैं और भी अधिक सुखी हो जाऊँ। इतने मेरे कुटुम्ब परिवार के

सगे सम्बन्धी हैं, कुटुम्बी हैं, स्वजन बन्धु बान्धव हैं। इस प्रकार स्वामिन्! इस मैं मेरी में, भ्रमवश पड़ा हुआ इन असत् वस्तुओं को मैं सत समझे बैठा हूँ।

ये जितने भी अहंता ममता वाले पदार्थ हैं, इनसे मेरा वास्तव में सम्बन्ध ही क्या है। रात्रि में शैयापर सोते समय स्वप्न में बड़े-बड़े महल, हाथी, घोड़ा धन वैभव देखते हैं, सुखोपभोग की सामग्री देखते हैं स्वप्न में उनका उपभोग भी करते हैं। मनोनुकूल पदार्थ के उपभोग से स्वप्न में ही सुख भी प्रतीत होता है। प्रतिकूल पदार्थ से दुःख का भी अनुभव होता है,रोमाञ्च हो जाते हैं, शरीर काँपने लगता है, कभी कभी आँखों मे आँसू तक आजाते हैं, किन्तु जहाँ निद्रा भंग हुई तहाँ न महल रहते हैं, न हाथी, घोड़ा, ऊँट, बछेड़ा रहते हैं। इसी प्रकार संसारी पदार्थ, संसारी सम्बन्ध भी स्वप्न में देखे पदार्थों के सदृश ही हैं। अंतर इतना ही है, कि स्वप्न में पदार्थ कुछ थोड़े समय तक रहते हैं, ये पदार्थ कुछ अधिक समय तक रहते हैं, किन्तु उनमें और इनमें अंतर कुछ भी नहीं। यह जीवन में एक स्वप्न ही है। ये संसारी पदार्थ वास्तव में अनित्य हैं, आज हैं कल नहीं हैं, किन्तु मैं अज्ञानवश इन्हें नित्य समझ कर इनके लिये लड़ रहा हूँ, इनके अधिकाधिक संग्रह के लिये असफल प्रयास कर रहा हूँ। ये जितने पदार्थ हैं अनात्म हैं। आत्मा से इनका कोई लगाव लपेट नहीं। किन्तु मैं मन्दमति इन्हें आत्मा ही माने बैठा हूँ। पुत्र के लिये कहता हूँ "आत्मावै जायते पुत्रः" जो आत्मा से उत्पन्न हो वही पुत्र। भला आत्मा किसी को उत्पन्न करता है। आत्मा तो जन्म मरण, सुख, दुख, क्षुधा पिपासा सभी से पृथक् है। ये संसारी पदार्थ दुःख रूप हैं। परिणाम में सभी दुख देने वाले हैं किन्तु मैं इन्हें सुख रूप समझकर इन्हीं में चिपटा हुआ हूँ। इन्हीं में आनंद का अनुभव करता हूँ। इन

दुःख रूप पदार्थों में विपरीत बुद्धि करके नाना क्लेश उठा रहा संसार बन्धन को सुदृढ़ कर रहा हूँ, जन्म मरण के चक्र को चिरकालीन बना रहा हूँ, सुख दुःखादि द्वन्द्वों में रमण कर रहा हूँ। अप्रिय में प्रिय भाव कर रहा हूँ। वास्तव में जो समस्त जीवों के सुहृद हैं, जो परम प्रेमास्पद हैं, जिनसे बढ़ कर कोई प्रियतम नहीं उन आप परमेश्वर को भुला बैठा हूँ।

प्रभो! मैं जीवन दाता, प्रेमास्पद आप प्रभु का परित्याग करके विषय वासनाओं की ओर दौड़ रहा हूँ। जैसे कोई स्वच्छ सुन्दर स्वादिष्ट मधुर जल वाला तालाब है, उसमें कमल सिवार तथा जल की घास उत्पन्न हो गई है। उसने ऊपर से जल को ढक लिया है। यद्यपि ये सब जल से ही उत्पन्न तृण हैं और जल के आधार से जीते हैं। जल न मिले तो मुरझा जायँ, मर जायँ, किन्तु जल के ही सहारे बढ़ कर उन्होंने जल को आच्छादित कर रखा है। अब प्यासे आदमी आते हैं जल न देखकर लौट जाते हैं। सामने ही बालू का मैदान है। उसमें बालू सूर्य की किरणों से चमक रही है। दूर से वह स्वच्छ जलसे भरा हुआ विशाल जलाशय दिखायी देता है। अब पुरुष उन कमल तृण से ढके जल को छोड़कर उस चमकीली बालू की ओर—मृग तृष्णा की ओर—दौड़ते हैं, ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं, वह मिथ्या जल भी बढ़ता जाता है,और आगे दिखायी देने लगता है। मिथ्या जल के पीछे दौड़ने वाले उन प्राणियों को कभी जल प्राप्त नहीं होता वे चाहें कितने भी दौड़ें। किन्तु जो उस मृगतृष्णा से मुख मोड़कर–तृण

से ढके समीप के ही जलाशय के पास जाकर-तनिक शिवार को हटाकर अमृत के सदृश स्वच्छ, स्वादिष्ट, मधुर सलिल का पान करता है, उसे जीवन मिल जाता है, वह अजर अमर हो जाता है।

स्वामिन्! ऐसा ही अज्ञ मैं भी हूँ। यह माया आपसे ही उत्पन्न हुई है, उसने आप जीवन धन को ढक लिया है, या आप को वह वराकी क्या ढकेगी आप ही ने जान बूझकर उसकी साड़ी में मुँह छिपा लिया है। उस योग माया से समावृत होकर सबके सामने आप प्रकाशित होते नहीं। मूढ़ लोग आप अज अव्यय को जानते नहीं। माया से ढके हुए जल रूप आप जीवन धन को छोड़कर विषय वासना रूपी मृग तृष्णा की ओर मैं दौड़ रहा हूँ। प्रभो! मुझे बचाइये, मुझे शत पथ दिखाइये।

इन विषय वासनाओं के कारण मेरी बुद्धि हीन और मलिन बन गई है। इसीलिए विविधि कामनाओं से विविधि काम्य कर्मों को मैं करता रहता हूँ। इसी कारण चित्त चंचल हो रहा है। उसकी चंचलता को सहस्रों बलवान घोड़ों से भी बली ये इन्द्रियायें और भी चंचल बना रही हैं। विषय के सघन वन में इधर उधर भटका रही हैं। सब ओर से प्रताड़ित इस अपने चंचल चित्त को मैं वश में नहीं कर सकता। इसे रोकने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

हे सर्वेश्वर! समस्त साधन करते करते अंत में थक कर मैंने आपके चरणारविन्दों की शरण ली है। इन्हीं पादपद्मों का

सहारा लिया है। आपके चरण कमलों का सभी सहारा नहीं ले सकते। असत् पुरुषों को तो वे सर्वथा दुष्प्राप्य हैं।

स्वामिन ! मैं अपने सौभाग्य की सराहना कहाँ तक करूँ! मुझ साधन विहीन मंद मति को आपके पुनीत पाद पद्मों में दर्शन हो सके इससे बढ़कर भाग्य की बात होगी क्या ? यह मेरे पुरुषार्थ का कोई फल नहीं। आप महान् को पुरुषार्थ करके कोई प्राप्त ही कैसे कर सकता है। आप ही जब कृपा करें तभी वेड़ा पार लग सकता है। आपकी ही असीम कृपा का मैं इसे फल समझता हूँ ।

देव ! अब मुझे विश्वास हो गया। मेरा संसार बन्धन छूटने वाला है। क्योंकि जिसकी सद्गति होने को होती है, उसकी चित्त वृत्ति स्वतः ही आपकी ओर लग जाती है। उसके हृदय में उत्तम भक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है।

प्रभो ! आप विज्ञान स्वरूप हैं, ज्ञान की साक्षात् मूर्ति हैं, संसार में जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, आपके ही माध्यम से होती हैं। आप न हों तो किसी भी वस्तु की प्रतीति न हो। जो काल समय पर प्राणियों को जन्म मरण, सुख दुख, जरा मृत्यु आदि प्राप्त कराता है, वह काल भी आपका ही स्वरूप है। आप स्वयं लोकक्षय के निमित्त काल बन जाते हैं, काल को भी कलयन करने वाले आप ही हैं, तथा कर्म के भी नियन्ता आप ही हैं और स्वभाव के भी प्रापक आपही हैं। आपही सब कुछ करते हैं, आप ही सर्वसमर्थ हैं, आप ही अनन्त शक्ति वाले हैं, आप

ही पर ब्रह्म परमात्मा हैं, ऐसे आप परमेश्वर के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे सर्वात्मन्! चित्त के अधिष्ठाता वासुदेव आप ही हैं, अहंकार के अधिष्ठाता सब प्राणियों के आश्रय संकर्षण भी आपका ही रूप है। बुद्धिके अधिष्ठाता प्रद्युम्न भी आप ही हैं और मन के अधिष्ठाता अनिरुद्ध भी आपका ही स्वरूप है। आप सर्व रूप हैं, ऐसे चतुर्व्यूह रूप आप प्रभु को बारम्बार नमस्कार है। प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूँ। पाहिमाम्। रक्षमाम् मेरी रक्षा करो। रक्षा करो, रक्षा करो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार अक्रूरजी ने भगवान् की स्तुति की फिर सन्ध्यादि से निवृत्त होकर रामकृष्ण के समीप गये और उन्हें लेकर मथुरा चले गये। यह मैंने श्री अक्रूर कृत भगवत् स्तुति आपसे कही, अब जैसे मथुरा जी में अक्रूर ने रामकृष्ण की स्तुति की है उसे आगे कहूँगा।

छप्पय

वासुदेव तुम चित्त अधिष्ठाता बनि जाओ।
संकरषन बनि सबहिं जगत आश्रय कहलाओ॥
प्रभु प्रद्युम्न कहाय बुद्धि के तुम ही स्वामी।
तुम ही बनि अनिरुद्ध होहु मन अन्तरयामी॥
सरबसु तुम ही कूँ समुझि, चरन शरन तुमरी गही।
प्रभु पद पुनि पुनि बन्दिके, श्वफलक सुत विनती कही।

## पद

तुम्हारो रूप जगत में छायो।
तुमने ही प्रपंच रचि माधव, मोहक विश्व बनायो ॥१॥
करम जाल में जीव फँस्यो है, माया माहिँ भुलायो।
जल शिवार तैं ढक्यो निरखि कैं, मृग तृष्ना हित धायो ॥२॥
भटक्यो इत उत अधिक दयानिधि, अब पावन पद पायो।
भयो भरोसो भय हर भारी, भव को भूत भगायो ॥३॥
बन्धन खुले भक्ति हिय आई, अद्भुत रूप दिखायो।
बार बार प्रभु पद परि रोवै, दीन जानि अपनायो ॥४॥

# अक्रूरकृत भगवत् स्तुतिः

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं,
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्,
ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः ॥१॥

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादि,
महानजादिर्मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे,
ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥२॥

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते,
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया,
गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम्।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥४॥

अन्यया च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ।
यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥५॥
एके त्वाखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥६॥
अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥७॥
त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥८॥
सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ।
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥९॥
यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥१०॥
सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ।
तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥११
तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये,
सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः,
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं,
सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः,
कुक्षिर्मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥
रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा,
मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापति,
र्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥१४॥
त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता,
लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ।
यथा जले सञ्जिहते जलौकसो,
ऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥१५॥
यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं विभर्षि हि ।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥
नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥१७॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥१८॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥१९॥

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥२०॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२१॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

भगवञ्जीवलोकोयं मोहितस्तव मायया ।
अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥२५॥

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥२६॥

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतंमनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥२७॥

सोऽहंतवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं,
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्ग,
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥२९॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥

*इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥*

# अक्रूरकृत श्रीकृष्ण स्तुति

( १०० )

यथाहि भूतेषु चराचरेषु,
महादयो योनिषु भान्ति नाना।
एवं भवान् केवल आत्मयोनि,
ष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति॥

(श्रीभा० १० स्क० ४८ अ० २० श्लो०)

छप्पय

*गुरुगृहतैं पढ़ि राम श्याम मथुरा में आये।*
*श्वफलक सुत घर गये चरनपरि अति हरषाये॥*
*विधिवत् पूजा करी करेंइस्तुति तुम जगपति।*
*उभय प्रकृति अरु पुरुष शुद्ध विज्ञान विमल मति॥*
*व्यापि रहे जग भूत ज्यों, बन्ध मोक्षतैं रहित हरि॥*
*त्यों जीवनि में व्याप्त प्रभु, देहिँ भक्ति पद कृपा करि॥*

---

भगवान् की स्तुति करते हुए अक्रूर जी कह रहे हैं—"हे भगवन्! आप किसी प्रकार के बन्धन में नहीं हैं, सब प्रकार स्वतंत्र हैं, आत्म स्वरूप और अद्वितीय हैं, आप इस जगत् के कार्य भूतों में इसी प्रकार अनेकवत प्रतीत होते हैं, जैसे पृथिवी आदि पंच भूत कारण तत्व अपने कार्य रूप चराचर भूतों में नाना रूपों में प्रतीत होते हैं।

भगवान् भक्तवत्सल कहलाते हैं, वे भक्तों पर अनुग्रह करके स्वयं ही उनके सब कार्य करते हैं, छोटी से छोटी सेवा उनकी करते हैं, अपने मान सम्मान का ध्यान नहीं रखते। भक्तों का मान बढ़ाने में ही उन्हें आनंद आता है। वे दर्शन देने स्वयं भक्त के समीप पहुँच जाते हैं और उनकी सेवा स्वीकार करके उन्हें कृतार्थ करते हैं। यही तो उनकी भक्त वत्सलता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गुरु गृह से लौट कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने गोपियों तथा अन्यान्य व्रजवासियों की सान्त्वना के हेतु उद्धवजी को व्रज में भेजकर उन्हें धीर वँधाया, कुब्जा पर कृपा की उसके घर गये। तदनंतर वे अपने परम भक्त पितृव्य श्री अक्रूरजी के घर पधारे। अपने घर राम श्याम को उद्धव सहित आते देख, अक्रूरजी संभ्रम के साथ उठकर खड़े हो गये। उनकी विधिवत् पूजा की, फिर उनके चरण कमलों को अपनी गोदी में रखकर उनकी स्तुति करने लगे।

अक्रूर जी राम श्याम की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे श्याम सुंदर! हे संकर्षण! आप दोनों ने मेरा अत्यधिक मान बढ़ाया। स्वयं मेरे घर पर पधार कर मुझे बहुत बड़ाई प्रदान की। आप हमारे कुल के भूषण हैं। हमारे कुल रूप नंदनवन में आप कल्प वृक्ष हैं। इस कुल में कंस ही एक कंटकाकर्ण बबूल का वृक्ष था। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि उस कंटकों से पूर्ण सुदृढ़ विष वृक्ष को आपने उखाड़ फेंका। उस पापी के मर जाने से हमारा कुल रूप कानन निष्कंटक बन गया, सुखी बन गया तथा समृद्ध हो गया। आप दोनों हमारे कुल के ही नहीं सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप इस दृश्य प्रपंच के एक मात्र कारण हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपका ही रूप है। जैसे बीज से वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार आपसे यह संसार बन गया है। आप

ही प्रकृति हैं, आप ही पुरुष हैं। जितना कार्य जगत् है जितना कारण जगत् है आपसे कोई पृथक् नहीं।

ब्रह्मन्! आप एक हैं, किन्तु एक से अनेक हो गये हैं। स्वयं अपनी शक्ति से इस स्थावर जंगम रूप चराचर जगत् को रचकर उसमें काल मायादि शक्तियों से घुस गये हैं प्रविष्ट हो गये हैं, इसीलिये आप नानारूपों से दिखायी देने लगते हैं। विविध नामों से सुने समझे जाते हैं।

प्रभो! जैसे घट का कारण मिट्टी है। कार्य घड़ा, सकोरा नाद, हंडी आदि वर्तन हैं। वर्तन बन जाने पर भी उनमें सर्वत्र मिट्टी ओत प्रोत रहती है। पात्र का कोई भाग ऐसा नहीं जा मिट्टी न हो। यद्यपि उन वर्तनों के नाम, रूप, आकृति, लम्बाई चौड़ाई, रंग आदि सब भिन्न भिन्न हैं, किन्तु वे सब हैं मृण्मय ही। सबमें सर्वत्र मिट्टी ही मिट्टी है, मिट्टी के बिना जैसे पात्र की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार आपके बिना इस जगत् की किसी भी वस्तु की, किसी भी रूप की, किसी भी नाम की तथा किसी भी गुण की कल्पना नहीं की जा सकती। आप एकमात्र स्वतंत्र आत्मा होकर भी अपने कार्य रूप भूतों में भिन्न भिन्न रूपों में भासते हैं।

हे जगदाधार! आप गुणातीत होने पर भी जगत् के गुणों को धारण करते हैं। रजोगुण से सृष्टि को रचना करते हैं सत्त्वगुण से उसकी रक्षा करते हैं और तमोगुण से स्वयं ही उसका विनाश भी कर देते हैं। इतना सब करते हुए भी आप गुणों से आबद्ध नहीं होते। सर्पों को खिलाते पिलाते उनके साथ खेलते भी उनके विष से सदा सर्वदा पृथक् ही रहते हैं। आप गुणों द्वारा कृत कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ते। बन्धन में तो अज्ञानी फँसते हैं आप तो ज्ञान स्वरूप हैं। बन्धन में तो द्वन्द्व युक्त पड़ते हैं

तो निर्द्वन्द्व हैं। आपको जब कर्म फल स्पर्श ही नहीं करते तो आप बन्धन में बँध भी कैसे सकते हैं ?

प्रभो ! आपकी बात तो पृथक् रही। यों साक्षात् जीवात्मा भी जन्म मरण से रहित है, जीव का न जन्म होता है और न जीव मरता ही है। जीव चाहे जिस योनि में जाय, जीव सब में एक है। हाथी से लेकर चींटी तक, ब्रह्मा से लेकर परमाणु तक सब में जीव एक ही है। योनि भेद से जीव में साक्षात् भेद सिद्ध नहीं होता, न जीव का जन्म ही होता है, जैसे पुराने वस्त्र छोड़कर प्राणी नया वस्त्र धारण कर लेता है, ऐसे ही जीव पुरानी देह को छोड़ कर नई देह में प्रविष्ट हो जाता है। जब जीवात्मा में ही जन्म और भेद भाव नहीं तो आप परमात्मा में तो बन्ध या मोक्ष की कल्पना करना अज्ञता ही है। अज्ञानी लोग अविवेक से आपमें बन्ध मोक्ष की कल्पना करते हैं। आप तो अजन्मा हैं, सदा निजानन्द में मग्न रहते हैं। कभी क्रीड़ा के लिये, लीला के लिये, विनोद के लिये, अपने आश्रित भक्तों को सुख पहुँचाने के लिये आप शरीर भी धारण कर लेते हैं। यह भी आप की रसमयी एक लीला ही है।

हे धर्म स्वरूप प्रभो ! आप सर्वत्र व्याप्त हैं इस से लोग आपको विष्णु कहते हैं। विष्णु बनकर आप चराचर विश्वकी रक्षा करते हैं। संसार में कल्याण हो, संसारी लोग सुखी हों, इसके लिये आपने सनातन वैदिक आर्य धर्म प्रकटित किया है। वेद का मार्ग सुविस्तृत सुखद राज पथ है। जिस पर कोई भी व्यक्ति आँख मीचकर दौड़ता हुआ चला जाय, वह न तो ठोकर लगकर गिरेगा ही, न पैर फिसलने पर रपटेगा ही। यह इतना विस्तृत सुखकर मार्ग है कि सभी इसका आश्रय ले सकते हैं। कालान्तर में कुछ दम्भी लोग मिथ्या पाखण्ड पूर्ण पन्थ बना लेते हैं। राज-

पथ को छोड़ कर कंटकाकीर्ण पगडंडी बना लेते हैं और शीघ्र पहुँचने का लोभ देकर नर नारियों को पथ भ्रष्ट करते हैं। इससे सनातन वैदिक मार्ग को क्षति पहुँचती है, धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म की वृद्धि होने लगती है। तब आप विशुद्ध सत्वमय शरीर धारण करके पृथिवी पर प्रकटित होते हैं। आप उन साधारण में नीचे उतरते हैं। उतरने का ही नाम अवतार है। यही आपके प्राकट्य का रहस्य है। आप नाना रूपों में अवतरित होते हैं।

हे यदुनन्दन! अब के आपने हमारे कुल के ऊपर अनुग्रह की है। अबके यादवों को गौरवान्वित बनाया है। इस समय अवनि पर असुरों के अंश से असंख्यों अक्षौहिणी पति नरपति उत्पन्न हो गये हैं। उनमें अमित बल है, प्रबल पराक्रम है। अगणित उनके पास सेना है, वे साधारण राजाओं के मारने से नहीं मर सकते। वे दर्प में भर कर वैदिक मार्ग की अवहेलना कर रहे हैं। उन असुरों के संहार के हेतु ही आप अवतरित हुए हैं। अपने अंश श्रीसंकर्षणजी को भी अबके आपने साथ ले लिये हैं। आप दोनों राम श्याम इस जगत् के ईश्वर हैं। धर्म संस्थापनार्थ आप का अवतार हुआ है। आप परम-पुरुष पुरुषोत्तम हैं। वसुदेव जी के घर भार्या देवकी के उदर से आपका प्राकट्य हुआ है। आपके जन्म से यह यदुकुल धन्य हो गया, परम पावन तथा लोक वन्द्य बन गया।

हे सर्वेश्वर! हम गृह मेधी हैं। घर में रहकर नित्य हत्या

करते हैं, घर भाड़ते समय, लीपते समय, चक्की पीसते समय, ओखली कूटते समय, भोजन बनाते समय, कृषि आदि आजीविका के व्यापार करते समय न जाने कितने जन्तुओं की हम हत्या करते रहते हैं, इन सब पापों के प्रायश्चित स्वरूप गृहस्थियों को पञ्च-यज्ञों का नित्य विधान है। देवता, पितर, मनुष्य सम्पूर्ण प्राणी तथा अतिथि इन सबकी पूजा का विधान है। हे अधोक्षज! इन सब यज्ञों के अधिष्ठातृदेव तो आप ही हैं। देवता आप के ही अंश हैं, पितृ गण आप ही हैं, प्राणिमात्र में आप ही हैं। नर देवों में आप ही व्याप्त हैं। आप ही स्मशान तुल्य हमारे घरों को परम पावन बनाते हैं। यज्ञों द्वारा तो वेदमार्गावलम्बी गृहस्थ ही पावन हो सकते हैं, जगत् को पावन बनानेके निमित्त आपने अपने चरणारविन्दों से भगवती सुरसरि गंगा को प्रकट किया है, जिनमें स्नान करने से पापी से पापी प्राणी भी स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। जिन चरण कमलों से ऐसी त्रिलोकी को पवित्र करने वाली धारा निकलती है, वे ही चरण कमल आज हम अधम गृहधर्मी यादवों के घरों में विचरण कर रहे हैं, उन घरों की महिमा क्या वर्णन की जाय। आज हम सब यादवों के घर परम पावन तीर्थ बन गये हैं।

भक्त वत्सल प्रभो! आप भक्तों के भर्ता हैं, उनके एकमात्र आश्रय तथा हितकारी हैं। आपकी वाणी वेद है, उसमें से जो भी निकलेगा वह सत्यं शिवं सुन्दरं ही होगा। सत्य तो आपका स्वरूप ही है। आप सब के सुहृद हैं और आप से बढ़कर संसार

में कृतज्ञ भी कौन होगा । आपके समीप कोई अच्छे बुरे कैसे भी भाव से चला भर जाय, आप इतने से ही आभारी बन जाते हैं और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसे परम पद देते हैं । इन्हीं सब गुणों से रीझकर तो भक्तगण एकमात्र आपको ही अपना इष्ट बनाते हैं, भला जो विष देने वाली राक्षसी पूतना को भी मुक्ति प्रदान करदे, इससे बढ़कर कृतज्ञ कौन होगा । ऐसे दयालु कृपालु करुणासागर शरणागत वत्सल प्रभु का परित्याग करके किसी अन्य की शरण में जाय, तो उसे शाश्वती शान्ति कैसे मिल सकती है ।

आप तो अपने भक्तों के लिये सब कुछ कर सकते हैं । आप का भजन करते हैं, आप उनके अत्यन्त ही ऋणी बन जाते हैं । आप उस अपने प्यारे भक्त को समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं, उसे इस लोक में तथा परलोक में भी कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती । आप उनकी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी इच्छा की भी पूर्ति कर देते हैं । यहाँ तक कि आप अपने आप को भी दे डालते हैं । आप में न उपचय है न अपचय, क्षय है न वृद्धि, न ह्रास है न उल्लास । आप इन सब से रहित होकर भी भक्तों के निमित्त बिक जाते हैं, उनके सेवक बन जाते हैं ।

प्रभो ! आपका दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ है, बड़े बड़े इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि लोकपाल गण महान् से महान् योगिराज भी आपकी चेष्टा को समझ नहीं सकते । स्वप्न में भी किसी को आपके

र्शन हो जाते हैं, तो वह कृतार्थ हो जाता है। मनोमयी मूर्ति ो ध्यान में आ जाती है, तो उसके सम्पूर्ण अशुभ नष्ट हो जाते , फिर हमें तो आप के साक्षात् प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं, हम : बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन होगा ?

स्वामिन् ! हम माया मोह में फँसे हैं, ये मेरे पुत्र हैं ये कलत्र हैं, यह मेरा धन है, ये स्वजन हैं बन्धु बान्धव हैं, ये भवन हैं, यह री देह है। यही अज्ञान है यही मोह है यही हमें संसारमें बाँधता है, यही चौरासी के चक्कर में घुमाता है। प्रभो ! यह सब आप की ाया द्वारा ही होता है। कृपा करके आप अपनी इस माया को अविलम्ब काट दीजिये, नष्ट कर दीजिये। यही आपके पुनीत ादपद्मों में पुनः पुनः प्रार्थना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार अक्रूरजी ने भगान् की स्तुति की भगवान् ने उन्हें अभय प्रदान की। यह मैंने अक्रूर कृत श्रीकृष्ण स्तुति कही। अब आगे जिस प्रकार महाराज मुचुकुन्द ने भगवान् की स्तुति की है उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

पृथिवी पै पाखण्ड पन्थ पापी फैलावें।<br>
तब नाना तनु धारि आपु अवनी पै आवें॥<br>
यादव कुल कूँ करन कृतारथ प्रकटे प्रभुवर।<br>
धन्य भयो कुल सकल देह परिवार नगर घर॥<br>
दये दरश प्रत्यक्ष प्रभु, सुर दुरलभ सब सुकृतकर।<br>
सुत कलत्र तन धन स्वजन, महँ मेरो यह मोह हर॥

## पद

जय जय माधव जय मधुहारी ।
जय जय मनमोहन गिरिधारी ॥

तुम अगुनी है गुन रचि डारौ, देओ जीवन पालौ मारौ ।
तुम ही बाँधो तुम ही तारौ, तुम ही हो सबके हितकारी ॥१॥जय०
मिट्टी जो बरतन बनि जावै, ज्यों सूत्र वस्त्र बुनि कहलावै ।
बहुरूप रंग में दिखलावै, त्यों भासौ सब में बनवारी ॥२॥जय०
जब जब अधरम अति बढ़ि जावै, अरुधरम अवनिपै घटि जावै ।
पाखण्ड अधिकजनकूँ भावै,तब तब प्रकटो प्रभु प्रनधारी ॥३॥जय०
अवतार कृष्ण बल अब लीन्हों, यादव कुल पावन करि दीन्हों ।
परि तुमकूँ सबने नहिँ चीन्हों,भगवान् भक्त भय भयहारी ॥४॥जय०
मैया वसुदेव कृतारथ हैं, श्री देवकि मातु जथारथ हैं ।
तब दरश जीव बड़ स्वारथ हैं,तुम भक्तनिकी विपदाटारी ॥५॥जय०
पद पद्मनितें गंगा निकसी, तुलसी पदरज मिलिकें विकसी ।
जग धन्य करत आगे खिसकी,तुम पाप ताप दुख संहारी ॥६॥जय०
तुम घर बैठे दरसन दीन्हों, निज दास कृतारथ करि दीन्हों ।
सब शोक मोह मेरो छीन्हों, प्रभु चरनकमल पै बलिहारी ॥७॥जय०

जय जय माधव जय मधुहारी ।
जय जय मन मोहन गिरिधारी ॥

# अक्रूरकृत श्रीकृष्ण स्तुति

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्रात् दुरन्ताच्च समेधितम् ॥१॥
युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परमस्ति न चापरम् ॥२॥
आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ।
ईयते बहुधा ब्रह्मन्श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥३॥
यथा हि भूतेषु चराचरेषु,
मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ।
एवं भवान् केवल आत्मयोनि,
ष्वात्माऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥४॥
सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं,
रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा,
ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥५॥
देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्,
भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ।
अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः,
स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥६॥

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय,
यदा यदा वेदपथः पुराणः।
बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भि,
स्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥७॥
स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः,
स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः।
अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांश,
राज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥८॥
अद्येस नो वसतयः खलु भूरिभागा,
यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनाति,
स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥९॥
कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्,
भक्तप्रियादृतगिरःसुहृदः कृतज्ञात्।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा,
नात्मातमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥१०॥
दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो,
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह,
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥११॥

# मुचुकुन्दकृत श्रीकृष्ण स्तुति(१)

( १०१ )

विमोहितोऽयं जन ईश मायया
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःख प्रभवेषु सज्जते
गृहेषु योषित्सु रुपश्चवञ्चितः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ५१ अ० ४६ श्लोक)

### छप्पय

*काल यवन भय भगे कृष्ण मुचुकुन्द गुफा तक।*
*लखि सोवत निज वस्त्र उढ़ायो दुवके नायक॥*
*पद प्रहार करि मर्यो यवन श्रीकृष्ण निहारे।*
*परब्रह्म प्रभु जानि वचन मुचुकुन्द उचारे॥*
*माया मोहित नारि नर, भजहि न तुमकूँ अगति गति।*
*सुखहित दुख संचय करें, संपति तजि लेवैं विपति॥*

---

*भगवान् की स्तुति करते हुए मुचुकुन्दजी कह रहे हैं—"हे ईश! यह जन तुम्हारी माया से विमोहित होकर तुम को भजते नहीं हैं। क्योंकि ये अनर्थ ही देखते हैं। सुखकी आशा करते करते दुःखों में फँस जाते हैं। गृहों में रहकर स्त्री पुरुष द्वारा ठगी जाती है, पुरुष स्त्री द्वारा ठगा जाता है।

यह मानव प्राणी सुख पाने के लिये कितने कितने उपाय सोचता है, कैसे कैसे कार्य करता है। अर्थ अनर्थ किसी का विचार नहीं करता। उसे तो सुखोपभोग की सामग्रियाँ मिलनी चाहिये। यदि नहीं मिलती हैं तो बड़ा दुखी रहता है, मिलती हैं उनके भोग से पूर्ण तृप्ति नहीं, अतः अतृप्ति के लिये रोता है। सभी का अनुभूत मत है, कि ये विषय परिणाम में दुखद हैं, किन्तु दूसरों के अनुभव से लाभ नहीं उठाता। जानबूझकर फँस जाता है, फिर निकलने के लिये तड़पता रहता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् मथुरा में आकर सुख पूर्वक रहने लगे। कंस के श्वसुर जरासंध ने सत्रह बार यादवों पर चढ़ाई की किन्तु उन्हें जीत न सका। तब काल यवन ने मथुरा पर चढ़ाई करदी। भगवान् उसके सामने से निरस्त्र होकर भागे। उसने भी निरस्त्र होकर उनका पीछा किया। भगाते भगाते भगवान् उसे मुचुकुन्द की गुफा में लेगये। जहाँ मुचुकुन्द देवताओं से यह वर प्राप्त करके कि "जो मेरी निद्रा में विघ्न डाले, वह मेरी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जाय" वहाँ सुख पूर्वक सो रहा था। भगवान् तो सब जानते ही थे, अपना दुपट्टा उसे उढ़ाकर छिप गये। काल यवन भी गुफा में आया। उसने समझा श्री कृष्ण ही सो रहे हैं। उसने एक लात मारी। मुचुकुन्द की दृष्टि पड़ते ही वह भस्म हो गया। तब मुचुकुन्द जी ने भगवान् को पहिचान कर उनकी स्तुति की।

भगवान् की स्तुति करते हुए मुचुकुन्द जी कह रहे हैं—"स्वामिन्! आपने मुझसे वर माँगने को कहा और यह भी कहा—"मैं तुम्हारी सभी कामनाओं को पूर्ण कर दूँगा।" सो, स्वामिन्! इन विषय भोगों में क्या रखा है। ये नर नारी आपकी माया में ऐसे मोहित हैं, कि अपने यथार्थ हित को

भूलकर अहित का कार्य करते रहते हैं। चाहते तो ये सब सुख हैं, किन्तु उपाय करते हैं, दुःख प्राप्ति का। सुख स्वरूप तो हे सर्वेश्वर आपही हैं और दुःख रूप हैं ये मृगतृष्णा के सदृश संसारी सुख। ये नर नारी सुख स्वरूप आपका तो भजन करते नहीं। दुःख रूप संसार को ही भजते हैं। इनकी दृष्टि सदा अनर्थ रूप इस दृश्य जगत् के भोगों की ही ओर रहती है। उन्हें ही प्राप्त करने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं। स्त्री पुरुष को देखती है और सोचती है—"यदि यह पुरुष मुझे प्राप्त हो जाय, तो मेरा सम्पूर्ण जीवन सुखमय हो जाय, मैं अपने समस्त दुःखों को, सभी अभावों को भूल जाऊँ।" इधर पुरुष सोचता है, "समस्त सुखों को देने वाली यह कामिनी ही है। यदि इसकी मुझे प्राप्ति हो जाय, तो मैं कृत कृत्य हो जाऊँ, मेरी समस्त अभिलाषायें पूर्ण हो जायँ, मुझे जीवन का सच्चा सुख प्राप्त हो जाय, मेरी समस्त आशाओं का केन्द्र यह कामधुरा कामिनी ही है। इसके संग से मैं सर्वथा सुखी बन जाऊँगा।" प्रभो! इस प्रकार बड़ी बड़ी आशाओं को लेकर, बड़े बड़े सुखों के स्वप्न संजोकर ये एक दूसरे के चिर संगी बनते हैं। मिथुन धर्म में प्रवृत्त होते हैं। कुछ दिनों के पश्चात दोनों ही अनुभव करने लगते हैं—"अरे, हम तो ठगे गये। जिस गृहस्थ को सुख की खान समझते थे, वह तो दुःख पुंज निकला। जिसे हम प्रसन्नता का केन्द्र समझते थे, वह तो चिन्ता उद्वेग का मूर्तिमान रूप निकला। अब वे सुख स्वप्न तो विलीन हो जाते हैं। रात दिन यहला, वहला, यह नहीं वह नहीं। यह करना है, वह करना है, यह नहीं हुआ वह नहीं हुआ। क्या करूँ, किधर जाऊँ, कहाँ मर जाऊँ, कैसे त्राण पाऊँ, इसी की चिन्ता में निमग्न हो जाता है। दोनों पछताते हैं, हाय! हम ठगे गये,

किन्तु यह गृही धर्म ऐसी गरमागरम खीर है, कि निगलने में कंठ जलता है, उगलने में हृदय जलता है। न निगली जाती है न उगली ही जाती है। अब उन्हें कभी कभी क्षीण आशा लगी रहती है, संभव है आगे सुख मिले, यह काम हो जाय तब सुख मिले, यह वस्तु प्राप्त हो जाय तब सुखी हो जायँ। इस कभी न पूरी होने वाली व्यर्थ की आशा में फँसे फँसे ही जीवन व्यतीत हो जता है।

प्रभो! चौरासी लाख योनियाँ हैं, सभी भोग योनि हैं उनमें कर्म करने की स्वतंत्रता नहीं। प्रकृति के अनुसार वर्ताव करते हैं। एक मानव योनि ही ऐसी है, कि शुभ कर्मों के द्वारा आपको पा सकते हैं और अशुभ कर्मों के द्वारा संसार में अतिशय आबद्ध हो सकते हैं। मानव शरीर ही सम्पूर्ण अंगों से युक्त है और भारत भूमि ही कर्म भूमि है। इस परम पावन भारत भूमि में अति दुर्लभ मानव शरीर पाकर भी यह अभागा प्राणी आप प्रभु के पादारविन्दों का भजन नहीं करता, पुनः पुनः जन्म लेने और पुनः पुनः मरने के पथ को प्रशस्त करता है। इन संसारी तुच्छ विषयों में अन्तः करण को आसक्त बनाये रखता है। जैसे पशु भोजन के लोभ से इधर उधर भटकता फिरता है। उसे अंधकूप में हरी हरी घास दिखाई देती है। उसके लोभ से वह उधर जाता है और उसमें गिर पड़ता है, बारंबार निकलने का प्रयत्न करता है, फिर न घास अच्छी लगती है न और कुछ, निकलने के लिये व्यग्र रहता है, किन्तु निकल नहीं सकता। इसी प्रकार यह प्राणी सुख के लोभ से विषयों की ओर बढ़ता है और गृह रूप अन्धकूप में गिरकर निरन्तर क्लेश पाता रहता है। इसी प्रकार मैं भी गृहान्धकूप में पड़ा क्लेश पारहा हूँ।

हे अजित ! मेरा जन्म इक्ष्वाकुकुल में हुआ है । राजर्षि युवनाश्व के पुत्र परम धरमात्मा अनेकों यज्ञ करने वाले महाराजा मान्धाता का मैं पुत्र हूँ । प्रभो ! चिरकाल तक मैंने इस सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य किया है । राजा होने के कारण राज्यलक्ष्मी के मद ने मुझे मदमत्त बना दिया । मैं उन्मत्त होकर संसारी व्यवहारों में प्रवृत्त हो गया । स्वामिन् ! उस समय मुझे आत्मा परमात्मा का विवेक नहीं था मैं शरीर को ही आत्मा समझकर इसी को सुख देने, इसी को परिपुष्ट करने के प्रयत्न करता रहता था । इस शरीर से जिनका सम्बन्ध था उन्हीं की चिन्ता में सदा निमग्न रहता था । ये मेरे पुत्र हैं, इनका कुछ अनिष्ट न हो ये स्वस्थ रहें सुखी रहें । यह मेरी स्त्री है, इसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे, इसे सभी साज शृङ्गार की सुंदर सामग्रियाँ सदा प्राप्त होती रहें । इतना मेरा राज्य कोष है और भी बढ़ता जाय इस पर कोई अन्य अधिकार न जमाले । इन्हीं सबकी चिन्ता में मेरा समस्त समय व्यतीत होता था । मैं मेरी में ही आयु का अधिकांश समय व्यर्थ व्यतीत कर दिया । इन पदार्थों में मेरी अत्यधिक असक्ति थी । इन सबकी रक्षा की दुरन्त चिन्ता में मेरा अमूल्य काल निष्प्रयोजन निकल गया । हाथ कुछ भी नहीं लगा ।

प्रभो ! यदि देखा जाय, तो जिस शरीर की हम इतनी चिन्ता करते हैं, जिसको स्वस्थ रखने को हम सदा विग्रह करते हैं, देखा जाय तो यह शरीर है क्या ? पंच भूतों का पुतला है । इसमें पृथिवी का अंश अन्य चार भूतों से आधा है । जैसे मिट्टी से घड़ा, सकोरा, नाद तथा घर की भीत बनायी जाती है वैसे ही हाड़ मांसादि पार्थिव पदार्थों से यह देह बनी है । इसमें और मिट्टी के घड़ा में अंतर ही क्या है । केवल देहामि-

मान के कारण ही प्राणी इस मिट्टी के पिंड में इतना ममत्व करता है। देहाभिमान के ही कारण मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं अमुक हूँ ऐसा मिथ्या प्रलाप करता है।

देव ! मैं यह हूँ, मेरा यह नाम है, मेरा यह पद है। नित्य प्रति निरन्तर मैं मैं करने से उस भाव में अभिनिवेश हो जाता है। मुझे सभी लोग पृथिवी पाल, राजाधिराज, भूपति, नरपति कहते थे अतः सुनते सुनते और कहते कहते मुझे यह दृढ़ अभिमान हो गया कि मैं राजा हूँ। मैं सबका पालक हूँ, रक्षक हूँ, सबका स्वामी हूँ। इस बात को मैं सर्वथा भूल ही गया कि पालना करने वाले तो एक मात्र आप ही हैं। रक्षक संसार में आपके अतिरिक्त दूसरा हो ही कौन सकता है। जगत् के एक मात्र ईश चराचर के स्वामी तो आप हैं। यह बात तो अब आपके दर्शन होने पर स्मरण हुई। उस समय तो मैं ही दिग्विजय के लोभ से अपना सर्वत्र प्रभाव जमाने के निमित्त रथों की सेना हाथियों की सेना, घोड़ों की सेना, तथा पैदल योद्धाओं की सेना—इस प्रकार चतुरंगिणी सेना को लेकर मदान्ध होकर, राजाओं को जीतता हुआ, पृथिवी पर पर्यटन करता रहता था। और जिसने तनिक भी अभिमान की बात कही उसी से युद्ध करने को उद्यत हो जाता था, जिसने मेरी अधीनता स्वीकार करने में तनिक भी आनाकानी की, उसे ही समर के लिये द्वन्द युद्ध के लिये ललकारता था। प्रभो ! इसी मिथ्याभिनिवेश में मैंने अपने जीवन का अमूल्य समय बिता दिया। आपका भजन चिन्तन नहीं किया। स्वामिन ! अब पछताने से होता भी क्या है अब तो काल बली मुझे ले जाने की तैयारी कर रहा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मुचुकुन्द जी ने और भी अत्यद्भुत भगवान् की स्तुति की है, उसे मैं आगे कहूँगा।

## छप्पय

पुन्य भूमि नर देह जनम दुर्लभ अति पायो।
प्रभु सुमिरननहिँ करयो विषय भोगनि लिपटायो॥
हौं राजा हौं धनी नारि सुत मेरो धन अति।
सबकी रक्षा करूँ फिरूँ विपरीत भई मति॥
भरिकें अति अभिमान महँ, सजि सैना भू पै फिरूँ।
भूल्यो तुमकूँ जगत्पति, सब कछु मनमानी करूँ॥

## पद

मोह में मोहन मदन भुलाये।
करयो न भजन फँस्यो चित विषयनि, नहिँ गोविँद गुन गाये॥१॥
नारि चहै नरतैं सुख मिलि हैं, नर तन नारि लुभाये।
दोऊ ठगे फँसे माया में, परि पीछे पछिताये॥२॥
अति दुरलभ मानुस तनु पायो, जिहि हित सुर तरसाये।
खान पान अभिमान धान धन, महँ सब दिवस गँमाये॥३॥
मैं राजा मेरी सब परजा, ममता मोह बढ़ाये।
सजि चतुरंगिनि ह्वै मद मातो, सैनिक संग घुमाये॥४॥
करुना सागर किरपा कीन्हीं, सेवक आइ जगाये।
प्रभु बिनु साधन सेवा पूजा, द्वार दयानिधि आये॥५॥

# मुचुकुन्द कृत–श्रीकृष्ण स्तुति (२)

( १०२ )

प्रमत्तमु च्चैरिति कृत्य चिन्तया,
प्रवृद्धलोभं विषयेषुलालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ५१ अ० ५० श्लो०)

छप्पय

*यह कीयो यह करूँ यही चिन्ता नित व्यापी ।*
*पीयो अति विष विषय भयो सुख तजि संतापी ॥*
*जान्यो जात न काल आखु सम जीवन खोयो ।*
*काल सरप ने झपटि दबोच्यो तब अति रोयो ॥*
*जब मरिकें मिट्टी भयो, सब समान निरधन धनी ।*
*सड़ि कृमि जरिकें राख तनु, जन्तु भख्यो विष्ठा बनी ॥*

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए मुचुकुन्द जी कह रहे हैं—"प्रभो ! यह मानव प्राणी अत्यंत उन्मत्त होकर निरन्तर इसी में निमग्न रहता है कि मुझे अब ये ये कार्य करने हैं। इसे निरन्तर अधिकाधिक विषयों की

यह पुरुष निरन्तर कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। या तो बीती बातों पर विचार करता है या आगे के विधान बनाता रहता है। अधिकांश समय तो उसका आगे की बातों में ही बीतता है, वर्तमान को भूल जाता है। जो होगया सो तो हो ही गया, जो होने वाला है, अभी भविष्य के गर्भ में है, होनहार होकर ही रहेगी। तुम अपने वर्तमान को बनाओ। इसे भगवत् चिन्तन के अतिरिक्त अन्य किसी काम में मत जाने दो। यही मनुष्य का एक मात्र मुख्य कर्तव्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की स्तुति करते हुए महाराज मुचुकुन्द कह रहे हैं—"प्रभो! वैसे तो थोड़ा बहुत संयम सभी करते हैं, किन्तु यमराज सबसे अधिक संयमी हैं। वे अपने कार्य में कभी प्रमाद नहीं करते। प्रमाद से ही मृत्यु होती है और यह मानव प्राणी पग पग पर प्रमाद करता है, इसीलिए जन्म मृत्यु के चक्कर में फँसता है। प्रमाद के कारण मृत्यु होने से ही इसलोक का नाम मर्त्यलोक है। सभी असावधानी करते हैं, आपकी शक्ति या आपका एक रूप काल ही ऐसा है जो सदा सर्वदा सावधान बना रहता है। और कोई चाहे भले ही भूल जाय, काल अपने समय को नहीं भूलता। कोई प्राणी कहीं भी जाकर छिप जाय, समय पर काल वहीं से पकड़ लावेगा। काल बड़ा ही बली है। इसीलिये प्राणी काल के नाम से ही थर थर काँपने लगते हैं, काल दुर्निवार है। इतना

---

प्राप्त करने की लालसा बनी रहती है, विषयों के लाभ से लोभ बढ़ता है। उस असावधान व्यक्ति को अकस्मात् आप उसी प्रकार दबोच देते हैं जैसे असावधान चूहे को जीभ लप लपाता सर्प मार डालता है, क्योंकि आप सदा सावधान रहते हैं।

होने पर भी यह पामर प्राणी काल को भूल कर ही कार्य करता है। विषयों के संग्रह में ही समस्त समय को विताता है। निरन्तर इसी चिन्ता में मग्न रहता है—"अब यह काम तो मैंने कर लिया। आगे इसे और करूँगा, इससे मेरी बड़ी प्रतिष्ठा होगी। वहुत धन एकत्रित कर सकूँगा। बहुत सुखपूर्वक रहूँगा, भाँति भाँति के भोगों को भोगूँगा। फिर मैं सर्वसमर्थ बन जाऊँगा। अपने विरोधियों का अन्त कर दूँगा। अपने पथ को निष्कंटक बना लूँगा। फिर मैं ही मैं रह जाऊँगा।" इन्हीं सब बातों को सोचते सोचते आपको भूल जाता है। अहंकार के मद में मत्त हो जाता है, मोहमयी मदिरा पीकर प्रमत्त बन जाता है। निरन्तर विषयों का ही चिन्तन करता रहता है, विषय नहीं मिलते तो अत्यंत दुखी होकर पुनः पुनः उनके लिये प्रयत्नशील बना रहता है। यदि विषय मिल जाते हैं संसारी विषयोपभोग की वस्तुओं का लाभ हो जाता है, तो लाभ से लोभ बढ़ता जाता है। मेरे पास अधिकाधिक भोग सामग्रियों का संग्रह हो, ऐसी तृष्णा प्रबल होती जाती है। फिर पूरी शक्ति लगाकर उनकी प्राप्ति में जुट जाता है। अब उसे भोग में सुख नहीं मिलता अर्थ वृद्धि ही उसके जीवन का ध्येय हो जाता है। वह असावधान होने से काल को भूल जाता है, किन्तु सदा सावधान रहने वाले काल स्वरूप आप तो उसे निमिष मात्र को भी नहीं भुलाते। जैसे चूहा मिष्ठान्न विक्रेता के घर में रहकर सदा चुपके चुपके मिष्ठान्न उड़ाता रहता है, यह यह नहीं देखता कि पास के बिल में जीभ लपलपाता हुआ काला सर्प उसकी घात में बैठा है, वह उन्मत्त होकर शरीर को मोटा बनाता रहता है, अवसर आते ही एक झपट्टे में ही सर्प उस मूषक को दबोच देता है। उसके समस्त मनोरथ मन के मन में ही रह जाते हैं। सर्प सदृ-

चाही निगल जाता है। इसी प्रकार सावधान आप इस नाना मनोरथ-युक्त प्राणी को सहसा पकड़ ले जाते हैं। फिर इसकी एक भी बात आप नहीं सुनते, वड़े से वड़े वहाने पर भी ध्यान नहीं देते। अपने संकल्पों के सहित प्राणी काल कवलित हो जाता है। काल रूप काले सर्प से डसा जाने पर कुछ भी तो करने में वह समर्थ नहीं।

हे परमात्मन्! हम लोग इस शरीर को ही आत्मा मानते हैं। इसी को हम अपना कहते हैं। इसी के मान अपमान को हम अपना मान अपमान समझते हैं। जब शरीर में तैल इत्र लगा कर इसे वस्त्राभूषणों से सजा कर, सुवर्ण मंडित रथों पर गुद गुदे गद्दों पर सुकोमल तकियों के सहारे इसे वैठाते हैं। अथवा साठ वर्ष के पर्वत के समान मदमत्त युवा हाथी की पीठ पर, सुवर्णमय सिंहासन विछाकर, उसमें शुभ्र सुन्दर मोतियों की झालर वाला छत्र लगाकर बिठाते हैं, तो इस शरीर को ही सब कुछ समझते हैं। यदि कोई भूल से भी छू दे तो विगड़ पड़ते हैं, तुम देखते नहीं मैं राजा हूँ। मेरा शरीर सर्वश्रेष्ठ है। उस राजा कहलाने वाले शरीर को भी आप दुर्निवार काल अपना कवल वना लेते हैं, उसे मृतक कर देते हैं। अव तक जो शरीर चंदन उशीनर, तैल तथा अन्य पवित्र पदार्थों से न्हिलाया जाता था, वही मृतक वन कर काक, कंकर, कुत्ता गीदड़ों का भोज्य वन जाता है, उसे खाकर वे विष्ठा वना देते हैं। अथवा भूमि में गाड़ दिया या यों ही पड़ा रह गया तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं,

यदि किसी ने अग्नि में संस्कार कर दिया तो मुट्ठी भर राख बन जाती है। कीड़ा, विष्ठा और भस्म के अतिरिक्त इस शरीर की अन्य कोई गति ही नहीं।

स्वामिन्! इस शरीर में अभिमान के अतिरिक्त और क्या है। यह सोचते ही सोचते मर जाते हैं कि मैं इस प्रदेश को जीतूँगा, इसे अपने आधीन बनाऊँगा। जब तक सम्पूर्ण प्रदेश को जीत भी नहीं सकता तभी तक काल का कवल बन जाता है। मान लो मृत्यु के पूर्व उसने समस्त शत्रुओं को जीत भी लिया, इस सम्पूर्ण वसुन्धरा का एक छत्र सम्राट बन भी गया। एक भी शत्रु न रहने से युद्ध भी समाप्त हो गया, समस्त राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार भी कर ली, सभी राजाओं द्वारा उसे सर्व श्रेष्ठ सम्मान प्राप्त भी हो गया, किन्तु क्या इतने से ही वह सर्व विजयी हो गया। सबको अपने बाहुबल से जीतने वाला शूर वीर भी काम के वश होकर, अबलाओं के कटाक्ष मात्र से घायल होकर; उनका क्रीड़ा मृग बन जाता है, उनका पालतू पशु बन जाता है, वे उसे जैसे चाहें नाच नचाती हैं, जैसे चाहें खेल खिलाती हैं। तब वह सर्व विजयी कहाँ हुआ? वह जो अपने को सब से श्रेष्ठ सबल समझता था वह अबलाओं द्वारा जीता गया।

प्रभो! यह काम वासना सबल से सबल व्यक्ति को निर्बल बना देती है। विजय करने के अनन्तर इस लोक की कामाग्नि में वश न भी हुआ, तो वह सोचता है, मैं इस जन्म में तो राजा

हूँ, अगले जन्म में भी महाराजा बनूँ ऐसा कोई कार्य करना चाहिये। यह तपस्या से संभव है। दान पुण्य से ऐसा हो सकता है। अतः दान पुण्य करता है। संसारी भोगों का परित्याग करके घोर तपस्या में प्रवृत्त होता है। जिस अनर्थ से इस जन्म में दुखी है, उसी अनर्थ को और बड़े रूप में चाहने की लालसा से उपवास करता है। वर्षा, धूप और शीत को सहन करता है। तृष्णा इतनी बढ़ जाती है, कि इस लोक के विषय भोगों से सन्तोष नहीं, दूसरे जन्मों में भी मुझे ये ही सब प्राप्त हों इसके लिये काया को क्लेश पहुँचाता है। उग्र तपस्या करता है। उसे कभी सुख नहीं मिलता, कभो शान्ति प्राप्त नहीं होती।

स्वामिन् यह जीव अपने पुरुषार्थ से आपको नहीं पा सकता। अपने स्वयं के साधनों से जन्म मरण के चक्कर से नहीं छूट सकता। आप ही जब कृपा करके इसे छुटावें तभी छूट सकता है। आप में चित्त लग जाय तो सभी बेड़ा पार हो जाय, आप में चित्त लगना, एक जन्म के पुण्यों का फल नहीं है।

प्रभो! न जाने यह जीव कब से संसार सागर में भटक रहा है, न जाने कितनी योनियों में इसने नाना क्लेश सहे हैं। अनेक योनियों में घूमते घूमते जब इसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है और मनुष्य योनि में भी इसे किसी सत्पुरुष के दर्शन हो जायँ, किसी सन्त का आश्रय इसे मिल जाय, कोई भगवत् भक्त इसे अपना ले, कोई महात्मा [इसके सिर पर हाथ रख दे, तो समझलो अब चौरासी के चक्कर से छूटने का समय अत्यंत ही

निकट आ गया। अब जन्म मरण के फन्दे में फँसने वाली रस्सी ढीली पड़ गयी। क्योंकि संत पुरुष सदा आपका स्मरण करते रहते हैं, आप सन्तों के हृदय में रहते हैं और वह करता है, सन्तों से प्रेम; तो आपसे प्रेम तो स्वतः ही हो गया। कोई रत्न मंजूसा में रखा है, किसी को मंजूसा मिल गयी तो मंजूसा में रखा रत्न अपने आप ही मिल गया। सन्त तो आपके निवास स्थान हैं, आप उनके निर्मल हृदयों में विराजते हैं, ऐसे सन्तों के प्रति जिनका अनुराग है, प्यार है, श्रद्धा भक्ति है, तो आप में भक्ति तो अपने आप ही हो जायगी, जहाँ आपमें भक्ति हुई वहाँ सद्गति प्राप्त हो ही गयी। क्योंकि आप सत्पुरुषों के आश्रय हैं एवं इस समस्त चर अचर, कार्य कारण रूप जगत् के नियन्ता हैं।

हे देव! कोई तो राज्य को छोड़ना चाहते हैं मेरा राज्य तो अपने आप छूट गया। मेरा बन्धन तो स्वतः ही टूट गया, मेरे अंहकार तथा मद का घड़ा स्वतः ही फूट गया। इसमें मेरा कोई अपना पुरुपार्थ नहीं। अपने पुरुपार्थ से मैं यह सब कर भी नहीं सकता था। अन्य साधु स्वभाव के चक्रवर्ती राजा, स्वयं राज्य पाट छोड़ कर वनों में तपस्या करने जाते हैं और आप के पाद पद्मों में यही प्रार्थना वे निरन्तर करते रहते हैं, कि राज्य में हमारा अनुराग न हो, सो आपने मुझसे तो सब कुछ अपने आप ही छुड़ा दिया।

हे विभो! आपने जो मुझसे वरदान माँगने को कहा सो,

प्रभो ! मैं आपके चरणारविन्दों की सेवा रूप वरदान ही माँगता हूँ। क्योंकि विषय भोगों की वांछा तो देहाभिमानी पुरुष ही करते हैं, किन्तु जो निरभिमानी पुरुष हैं, जो शरीर को ही सब कुछ नहीं समझते, जिन्होंने विषय भोगों का खोखलापन समझ लिया है, वे आपकी चरण सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की याचना ही नहीं करते। वे सदा सर्वदा इसी की प्राप्ति की प्रार्थना करते रहते हैं। स्वामिन् ! आपकी आराधना करके भी जो आपसे बन्धन में बाँधने वाले विषयों की ही याचना करें तो उससे बढ़कर मूढ़ कौन होगा। आप मोक्ष-प्रद प्रभु की आराधना का फल संसारी मोहों की निवृत्ति ही होना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! इस प्रकार मुचुकुन्द जी ने भगवान् की स्तुति की, वे और भी स्तुति करेंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

### छप्पय

दशहुँ दिशनि कूँ जीति बने सम्राट महामति।<br>
किन्तु काम वश भये बने क्रीड़ा मृग भूपति॥<br>
फिरिहू राजा होहुं करैं तप देह जरावैं।<br>
पुनि पुनि जनमें मरें तुम्हें प्रभु जी नहिँ पावैं॥<br>
सत संगति मिलि जाय जब, तब बन्धन कटि जायँगे।<br>
चरन कमल सेवा मिलै, प्रभु यह ही वर चाइँगे॥

## पद

समागम संतनि को जब होवै ।
तब सब मिटै मलिनता मन की, देह अपन पौ खोवै ॥१॥
जिन के हिय हरि सदा विराजैं, तिनकूँ जो नर जोवै ।
तो सब पाप ताप जग कलमप, संत दरसतैं धोवै ॥२॥
जो जग त्रिपयनि फँस्यौ हँस्यौ सो आगे चलिकें रोवै ।
प्रभु पद पावै भव भय छूटै, तानि दुपट्टा सोवै ॥३॥

# मुचुकुन्द कृत श्रीकृष्ण स्तुति ( ३ )



तस्माद् विसृज्याशिष ईश सर्वतो
रजस्तमः सत्त्व गुणा नुवन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परम्
त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥*

( श्री भा० १० स्क० ५१ अ० ५७ श्लो० )

छप्पय

*कौन विवेकी त्यागि पदुमपद चाहै विषयनि ।*
*त्रिगुनमयी तजि सकल कामना लिपट्यो चरननि ॥*
*का विषयनि सुख नाथ ! अन्त में अति दुखदाई ।*
*शरनागत अपनाइ प्रेम पद दै यदुराई ॥*
*सकल कामना त्यागिकैं, शरन लई अशरन शरन ।*
*चिदानन्द पर पुरुष हरि, प्रभु निर्मल अद्वय अगुन ॥*

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए मुचुकुन्द जी कह रहे हैं—"हे ईश मैं रजोगुण, तमोगुण तथा सत्व गुण से अनुबन्धित सभी कामनाओं का परित्याग करके आप निरंजन, निर्गुण, अद्वय, चिन्मात्र परम पुरुष की शरण में जाता हूँ।"

मानव जीवन का सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ, सबसे उत्तम कर्म यही है, कि वह सर्वात्म भाव से श्रीहरि की शरण में जाय; उन्हीं का भजन, चिन्तन, मनन, पूजन, स्मरण, कथन और वन्दनादि करे। भगवत् कैंकर्य को छोड़कर और जितने भी संसार के कार्य हैं वे सब वन्धन के हेतु हैं। एकमात्र प्रभु पादपद्मों की स्मृति ही समस्त क्लेशों को, समस्त वन्धनों को मूलोच्छेदन करने वाली है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् की स्तुति करते हुए मुचुकुन्द जी कह रहे हैं—प्रभो ! भाँति भाँति के कठोर तप करके, बड़े बड़े यज्ञ यागादि करके उनके फल स्वरूप मानों सार्वभौम पद प्राप्त कर भी लिया तो क्या हुआ ? उससे शान्ति तो मिलने की नहीं। जितनी ही विषय सामग्री बढ़ती जायगी, उतनी ही चिन्ता भी अधिक बढ़ती जायगी। विषयों की प्राप्ति की तथा प्राप्त विषयों की रक्षा की चिन्ता से समस्त शान्ति भङ्ग हो जाती है। पुरुष आप का चिन्तन छोड़ कर रात्रि दिन विषयों के ही चिन्तन में लगा रहता है, इससे संसार वन्धन ढीला होने के स्थान में और अधिक दृढ़तर होता जाता है। इसीलिये प्रभो ! मैं आपसे संसारी वस्तुओं की प्राप्ति का वर नहीं चाहता। हे भगवन् ! संसार में जितनी भी कामनायें हैं सब त्रिगुण मयी हैं। जब सत्वगुण का उदय होता है, तो बुद्धि निर्मल हो जाती है, हृदय में प्रकाश सा होता है। सात्विकी श्रद्धा बढ़ जाती है,तप करने की इच्छा होती है, एकान्त स्थान में, तीर्थों में, पुण्य सरिताओं के तट पर निवास करने की इच्छा होती है। संसार से विराग होने लगता है। जब रजोगुण बढ़ता है, तब शरीर में अहंभाव होने लग जाता है। सर्वत्र यश, प्रतिष्ठा और मान प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने की इच्छा बलवती बन जाती है। अपनी पूजा प्रतिष्ठा अच्छी लगने लगती है। जीवन में दंभ भी आ जाता है, सब पर प्रभुत्व

स्थापित करने की लालसा होती है। जब तमोगुण बढ़ता है तो बुद्धि बिमूढ़ हो जाती है। अधर्म को ही धर्म समझने लगता है। दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में, दूसरों का अनिष्ट करने में आनन्द आने लगता है। निद्रा बहुत अच्छी लगती है, आलस्य में पड़े ही रहने की इच्छा होती है। प्रमाद बढ़ जाता है तामस आहार विहार की इच्छा होती है। इस प्रकार सत्व, रज और तमोगुण से सम्बन्ध रखने वाली जितनी भी कामनायें हैं, वे सब संसार बन्धन को जकड़ने वाली बेड़ियाँ हैं। भव के बन्धन हैं, अन्तर इतना ही है, कि एक लोहे की बेड़ी है, दूसरी रस्सी की और तीसरी रेशम की। बेड़ी चाहे लोहे की हो या रेशम की, है तो वह बेड़ी ही। अतः प्रभो मैं इन तीनों गुण सम्बन्धी कामनाओं का परित्याग कर चुका हूँ। क्योंकि ये कामनायें मन को मलिन बना देती हैं। पुत्रों पौत्रों का मोह मनुष्य को जड़ बना देता है। आप मल से सर्वदा रहित हैं, निर्मल हैं अतः मैं समस्त मलों को धोने के निमित्त आप निर्मल की शरण में आया हूँ।

स्वामिन्! मल तो गुणों में होता है, किन्तु आप तो गुणातीत हैं, निर्गुण हैं इन तीनों गुणों से सर्वथा रहित हैं। गुण अपना प्रभाव आप पर डाल नहीं सकते ऐसे निर्मल निर्गुण आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

निर्मल और निर्गुण बहुत से व्यक्ति हो सकते होंगे? सो, प्रभो! यह भी बात नहीं हो सकती, क्योंकि आप अद्वय हैं। आपके बराबर ही जब कोई दूसरा नहीं तो आपसे बड़े होने की तो कोई कल्पना ही नहीं कर सकता। आप चिन्मात्र हैं, चैतन्य ही आपका स्वरूप है। आप स्वामिन्! पुरुषोत्तम हैं, पुरुष से परे परमपुरुष हैं। इसीलिये हे शरणागत वत्सल! मैंने आपके चरण कमलों की शरण ली है।

प्रभो ! मैं अब तक संसारी संतापों से संतप्त प्राणी था। मैं आपको भूल कर विषय वनों में भटक रहा था। मेरे कर्म फल मुझे पग पग पर प्रपीड़ित कर रहे थे। कर्मों के फल अपना संताप पहुंचा कर मुझे तपा रहे थे। आँखें सदा सुंदर सुंदर रूप देखने को लालायित बनी रहतीं, जिह्वा सुंदर से सुंदर स्वादिष्ट षड्रस भोजनों को लप लपाती रहती। घ्राणेन्द्रिय सुगंधित गंधों को सूँघने के लिये उत्सुक बनी रहती। श्रोत्रेन्द्रिय सुन्दर मधुर शब्दों को सुनने के लिये उतावली बनी रहती। स्पर्शेन्द्रिय सुकोमल, गुल गुले, लुचुलुचे प्रिय सुखद पदार्थों के स्पर्श के लिये व्यग्र बनी रहती। मन अपनी भाँति भाँति उड़ान पृथक ही भरता रहता। इस पर इन्द्रिय मन, तथा: काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छे शत्रु मुझे सदा दुखी बनाये रहते। इन प्रबल शत्रुओं की तृष्णा कभी शान्त ही नहीं होती थी, इसी कारण ये मुझे कभी सुख से बैठने ही न देते। सदा अशान्ति बनी रहती। इन्हीं सब कारणों से मैं संसार की सभी आशाओं को छोड़ कर आपकी शरण में आया हूँ, आप अच्युत का आश्रय लिया हूँ।

हे शरणागतों को शरण देने वाले प्रभो ! आपके पाद पद्म सभी प्रकार के भयों को दूर करके निर्भय बनाने वाले हैं। यह प्राणी मृत्यु रूपी भयंकर राक्षसी के भय से इधर उधर व्यग्र बना घूमता रहता है, यह मृत्यु काली नागिन के समान पीछे पड़ जाती है, इसी से बचने के लिये प्राणी सभी भुवनों में घूमता है, किन्तु यह डाइन कहीं भी पीछा नहीं छोड़ती। केवल आपके चरण कमल ही ऐसे हैं, जहाँ मृत्यु की दाल नहीं गलती। कैसे भी प्राणी आपके पादपद्मों के निकट पहुँच जाय, तो वह वहाँ निर्भय हो जाता है, सुखपूर्वक तान दुपट्टा सोता है, मृत्यु का वहाँ

कुछ भी वश नहीं चलता, वह अपना सा मुँह लेकर वहाँ से लौट जाती है। स्वामिन् ! संसार में सबसे क्लेशकर शोक है। असंख्यों शोक के स्थान हैं, पग पग पर प्राणी को शोक हो जाता है। आपके चरणारविन्दों के समीप शोक तो पहुँच ही नहीं सकता जो आपके चरणारविन्दों के आश्रय हो चुके हैं, उनके पास शोक तो फटक भी नहीं सकता। अतः आपके पाद पद्म शोक को भगाने वाले हैं, अशोक बनाने वाले हैं, यही सब सोच कर मैंने आपके चरणारविन्दों को ग्रहण किया है, आपकी शरण में आया हूँ। प्रभो ! आपका तो यह सदा का व्रत है, कि जो एक बार भी हृदय से यह कह दे कि "नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ।" तो तुम उसे सभी प्राणियों से अभय बना देते हो। इसी विरुद को सुन कर मैंने आपकी शरण ग्रहण की है। आप मुझ संसार से संतप्त शरणागत की रक्षा कीजिये। मुझे अपने पाद पद्मों का अवलम्बन दीजिये। यही आपके अरुण वरण के चरणारविन्दों में पुनः पुनः प्रार्थना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब इस प्रकार महाराज मुचुकुन्द ने भगवान् वासुदेव की आर्त वाणी में स्तुति की, तो भगवान् उन पर अत्यंत प्रसन्न हुए, उनकी बड़ाई की और अपनी प्राप्ति का उपाय बताते हुए उन्हें अगले जन्म में ब्राह्मण बनने का वरदान दिया और उसी शरीर से अपनी प्राप्ति होने का आश्वासन दिया। यह मैंने श्री महाराज मुचुकुन्द कृत भगवत् स्तुति आपको सुनायी। अब जिस प्रकार भू-देवी ने भगवान् की स्तुति की उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

### छप्पय

करम फलनितैं दुखित निरन्तर ताप तपायो।
षडरिपु दीयो दुःख भागि पद पदुमनि आयो ॥
शरनागत प्रति पाल जगत में तुम विख्याता।
शोक मोह दुख हरो, मृत्यु भ्रम भय के त्राता ॥
पाये दुख जग जाल फँसि, बहु जोनिनि भटकत फिरयो।
कहूँ शान्ति जब नहिं लही, प्रभु पद पदुमनि महँ परयो ॥

### पद

नाथ ! तव चरन शरन में आयो।
अब तक भटक्यों भव सागर में, माया मोह भुलायो ॥१॥
करम फलनि कूँ भोगत भोगत, बहु योनिनि भटकायो।
पेट भरयो कूकर सूकर सम, प्रभु पद मन न लगायो ॥२॥
ज्यों ज्यों विषय भोग बहु भोगे, त्यों त्यों मोह बढ़ायो।
भई न शान्ति न हिय सुख पायो, जीवन व्यरथ गँवायो ॥३॥
भव भय नाशक सब सुख दायक, चरन कमल लिपिटायो।
प्रभु परमेश्वर पतित उधारन, शरनागत अपनायो ॥४॥

## मुचुकुन्द कृत श्रीकृष्ण स्तुति

मुचुकुन्द उवाच

विमोहितोऽयं जन ईश मायया,
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते,
गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥१॥
लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं,
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति,
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥२॥
ममैप कालोऽजित निष्फलो गतो,
राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वा,
सज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥३॥
कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसंनिभे,
निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपै,
र्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥४॥
प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया,

प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे,
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥५॥

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन् ,
मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते,
कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥६॥

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो,
वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां,
क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥७॥

करोति कर्माणि तपस्सुनिष्ठितो,
निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ।
पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति,
प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥८॥

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे,
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ,
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥९॥

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो,

राज्यानुवन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्राथ्यते साधुभिरेकचर्यया,
वनं विविक्तद्भिरखण्डभूमिपैः ॥१०॥
न कामयेऽन्यं तव पादसेवना,
दकिञ्चनप्राथ्यतमाद् वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे,
वृणीत आर्यो वरमात्मवन्धनम् ॥११॥
तस्माद् विसृज्याशिष ईश सर्वतो,
रजस्तमःसत्त्वगुणानुवन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं,
त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥१२॥
चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै,
रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्,
भयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश ॥१३॥

# भूमिकृत श्री कृष्ण स्तुति

( १०४ )

नमस्ते देव देवेश शङ्ख चक्र गदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तुते ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ५९ अ० २५ श्लो० )

छप्पय

*करयो उपद्रव भौम-असुर सुर नर घबराये ।*
*सुरपति विनती करी कृष्ण तिहि वधहित धाये ॥*
*लड़यो अन्त में मर्यो शरन भूदेवी आई ।*
*प्रभु चरननि में परी जोरि कर विनय सुनाई ॥*
*शङ्ख चक्र गद पदुमधर; अवतारी अति अमित बल ।*
*नाभि कमल माला कमल, कमल नयन पद कर कमल ॥*

भगवान् ही मारने वाले हैं भगवान् ही पालने वाले हैं और भगवान ही जीवन दान देने वाले हैं। भगवान् ही सुख देते हैं, भगवान् ही दुख देते हैं। सबके कर्ता धर्ता, हर्ता, भर्ता

---

* भूदेवी भगवान् की स्तुति करते हुए कह रही हैं—"हे देव देवेश! हे शङ्ख चक्र गदाधारिन् ! हे परमात्मन् ! आप भक्तों की इच्छा के अनुरूप रूप रखने वाले हैं आप के लिये बारम्बार नमस्कार है ।

संहर्ता श्री हरि ही हैं। अतः कैसा भी स्थान हो, कैसी भी अवस्था हो, कैसा भी काल हो, सभी स्थानों में, सभी अवस्थाओं में, सभी समय में श्रीहरि की ही स्तुति प्रार्थना करनी चाहिये। विवाह में भी "मंगलं भगवान् विष्णुः मंगलं गरुड़-ध्वजः" कहना चाहिये और मरने पर भी "राम नाम सत्य है" इसका उच्चारण करना चाहिये। शिव के सभी कार्य शिवप्रद मंगलमय ही होते हैं। शिव अशिव कैसे कर सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! जब भौमासुर बहुत अधिक उपद्रव करने लगा, वरुण का छत्र छीन लाया, माँ अदिति के कुंडल उतरवा लाया, तथा देवताओं के स्थानों पर अधिकार अस्थापित कर लिया। तब देवेन्द्र ने उसके वध के लिये भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की। उसकी माता भूमि का अवतार थी। वह भगवान् के ही अंश से उत्पन्न हुआ था, इसी से उसे कोई मार नहीं सकता था। देवेन्द्र की प्रार्थना पर भगवान् उसके यहाँ गये। उसे युद्ध में मार डाला। तब उसकी माता भूमि देवी भगवान् के सम्मुख आई साथ में भौमासुर के पुत्र भगदत्त को भी लायी। भूमि देवी ने आर्त होकर गद् गद् वाणी में भगवान की स्तुति की।

भूदेवी स्तुति करती हुई कहती हैं—"हे भगवन्! आप तो अरूप हैं। आपका अपना कोई रूप ही नहीं है, आप भक्तों की इच्छा के अधीन हैं। भक्त जैसा रूप चाहते हैं, आप वैसा ही रूप रखते हैं। हे प्रभो! आप अपने चार हाथों में से एक में स्वच्छ शुभ्र गंभीर घोष वाला शंख धारण करते हैं, एक में विपत्तियों के सिरों को धड़ से पृथक् कर देने वाला सहस्र आराओं वाला चक्र धारण करते हैं। एक में कौमोदकी गदा धारण करते हैं, एक से क्रीड़ा कमल घुमाते रहते

हैं। स्वामिन्! आप देवताओं के भी देवता हैं, सभी देव दानव, पशु पक्षी, नर किन्नर आप को अपना ईश मानते हैं। आप परम आत्मा रूप हैं। हे भगवन्! आपके पाद पद्मों में प्रणाम है।

प्रभो! आप कमल प्रिय हैं, तभी तो आप अपने चतुर्थ हाथ में निरन्तर कमल धारण किये रहते हैं। आपका सम्पूर्ण शरीर ही कमल के सदृश है। आपकी नाभि से एक कमल निकला, जिससे ब्रह्मा जी का जन्म हुआ। इसी कारण ब्रह्मा जी 'कमल सम्भव' कहलाये।

प्रभो! आपके अरुण तरुण चरण, कमल के सदृश सुकोमल तथा सुगंधियुत सुकुमार हैं। आपके कर कमल के समान लाल तथा गदगुदे और सुंदर हैं। आप कमलों की मनोहर माला पहिने रहते हैं। आपके नयन भी प्रफुल्लित कमल के सदृश, बड़े बड़े लुभावने अरुण डोरे वाले तथा डह डहे हैं। जो सदा सुप्रसन्न रहने के कारण भक्तों को शांति दायक हैं और जिनके तनिक से कटाक्ष से आश्रित गण कृतार्थ हो जाते हैं। आश्रित गण आपके चरण कमलों का सदा सुरुचि के साथ सेवन करते हैं। आप के ऐसे पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे पुरुषोत्तम! आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। जितने भी चराचर प्राणी हैं, आप उन सब के आश्रय हैं। अवलम्ब हैं। आप इस चराचर जगत में सदा व्यापक बने रहते हैं। आपके चरणों में पुनः पुनः वन्दन है, वारम्वार नमस्कार है।

प्रभो! जगत में जितने भी कार्य वर्ग हैं, आप इन सब से पूर्व हैं। आपकी कभी उत्पत्ति ही नहीं हुई। आप अजन्मा हैं, अनादि हैं। आप प्रकृति तथा पुरुष के भी जनक हैं।

पुरुषोत्तम हैं। आपका ज्ञान अखंडित है आप पूर्ण बोधस्वरूप हैं। आपको बारम्बार प्रणाम है।

हे देव! यह सम्पूर्ण जगत्, चराचर ब्रह्माण्ड आप से ही उत्पन्न हुआ है, इसकी उत्पत्ति आपने ही की है, किन्तु स्वयं आप किसी से उत्पन्न नहीं हुए हैं। आप तो अजन्मा अजर अमर अगोचर तथा अलख हो। आपकी शक्ति अनन्त है। आप परिपूर्णतम हैं, बड़े से भी बड़े हैं, इसीलिये वेदवित् आप को ही ब्रह्म कहते हैं। आप सर्वभूतमय हैं, अतः आपके श्री चरणों में श्रद्धा भक्ति सहित नमस्कार है।

निर्गुण होते हुए भी जब आपको सृष्टि करनी होती है, तब रजोगुण को स्वीकार करके ब्रह्मा बन जाते हैं जब जगत् के संहार की इच्छा होता है, तब रुद्र रूप रख लेते हैं, और जगत् के पालन करने के लिये सौम्य विष्णु बन जाते हैं। इतना सब होने पर भी गुण आप पर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते। आप इनसे अछूते बच जाते हैं। इनसे संसर्ग रखने पर भी आप इन मायिक गुणों से सदा निर्लिप्त बने रहते हैं।

प्रभो! आप ही सबको निगल जाने वाले काल हैं, आप ही जगत् की रचना करने वाली प्रकृति हैं, आप ही पुरुष हैं, फिर भी आप इन सबसे सर्वथा पृथक् हैं।

स्वामिन्! सबको धारण करने वाली में पृथिवी, प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाला जल, सबके आहार को पकाने वाली अग्नि, सबके प्राणों को जीवित रखने वाली वायु, सब को अवकाश देने वाला आकाश, पंच तन्मात्रायें, समस्त इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवता, इन्द्रियाँ, मन, अहंकार और महत्तत्व तथा यह जो भी दृश्य चराचर जगत् है वह आप

अद्वितीय में है, ऐसा लोगों को भ्रम है। अथवा क्या यह भ्रम है कि आप में ये सब नहीं हैं, अर्थात् आपमें ही यह सब हैं।

हे शरणागत वत्सल प्रभो! आप ने भौम को मारा, सो, वह तो मर ही गया। अब उसका यह पुत्र भगदत्त है, यह आपसे बहुत ही भयभीत हो रहा है, हे भवभय हारी भगवन्! इस भयभीत भक्त को अपने चरणारविन्दों की शरण में ले लीजिये। इसके समस्त भयों को दूर करके इसे अभय प्रदान कीजिये, सब ओर से इसकी रक्षा कीजिये। इसके मस्तक पर सभी ताप संतापों के दूर करने वाले अपने वरद हस्त को रख दीजिये। इसे अपनी शरण में लेलीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भूमि देवी ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने भगदत्त को अभय प्रदान की और भौमासुर के कारावास में एकत्रित सोलह सहस्र एक सौ कुमारियों से विधिवत विवाह किया। यह मैंने संक्षेप में भू देवी श्रीकृष्ण स्तुति कही, अब जैसे माहेश्वरज्वर ने भगवान् की स्तुति की, उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

वासुदेव भगवान् विष्णु पर पुरुष बीज जग।
ब्रह्म अनन्त अनादि अनामय आत्मा अज अग॥
त्रिगुन त्रिदेव बनाय स्वयं निरगुन निष्करता।
भूत, विषय, सुर, करन सबनि में भासौ भरता॥
प्रनत पाल प्रभु परावर, करुनाकर किरपा करौ।
भौम तनय भगदत्त जिह, जाके सिर निज कर धरौ॥

## पद

करौं बन्दन पद पदुम तिहारे।
शंख चक्रधर गदापदुमधर, कमल नयन अनियारे ॥१॥
कमल सरिस कर कमल बदन बर, कमल माल गर धारे।
कमल नाभि कमलासन, कारक, कमला प्रान पियारे ॥२॥
पुरुष, प्रधान, काल, हरि, हर, अज, ये सब रूप तिहारे।
आपु अलिप्त अगुन अविनाशी, अच्युत अखिल अधारे ॥३॥
भ्रमवश भासै भगवन् भव सब, तुम सबतैं हौ न्यारे।
प्रभु सुन भौम परयो पद पदुमनि, कर सिर धरो मुरारे ॥४॥

# भूमिकृत श्रीकृष्ण स्तुति

## भूमिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तुते ॥१॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥३॥
अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥४॥
त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो,
तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते,
कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥५॥
अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो,

मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं,
त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥६॥
तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं,
भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं,
शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥७॥

# माहेश्वर ज्वर कृत श्रीकृष्ण स्तुति

( १०५ )

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशम्,
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्ति मात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थान संरोध हेतुम्
यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ६३ अ० २५ श्लोक०)

छप्पय

*ऊषा अरु अनिरुद्ध ब्याह में युद्ध भयो अति ।*
*कृष्ण करें इत युद्ध लड़ैं उत तैं श्री पशुपति ॥*
*माहेश्वर ज्वर शंभु कृष्ण ने वैष्णव छोरयो ।*
*वैष्णव ज्वर अति सबल शंभु ज्वर साहस तोरयो ॥*
*विनय सहित इस्तुति करैं, शरनार्थी बनि शम्भु ज्वर ।*
*जग कारन तारन परम—आत्मा अद्वय परावर ॥*

---

*भगवान की स्तुति करता हुआ त्रिशिर ज्वर कह रहा है—"हे देव ! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप अनंत शक्ति वाले परमेश्वर हैं। आप सर्वात्मा केवल, ज्ञान स्वरूप, विश्व की उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति के कारण, वेद वाक्यों से लक्षित, सर्वात्माधिकार से परे तथा प्रशान्त हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है।

दो बड़ों की लड़ाई में तीसरे निर्बल पिस जाते हैं। बड़े लोग तो बड़े ही ठहरे, उनसे कोई कुछ कह नहीं सकता, फिर चाहे वे उचित करें या अनुचित। बीच वालों का कर्तव्य है कि जब वे अपनी पराजय देखें तो उसे अपनी पराजय न समझकर ईश्वर की अनुग्रह समझें और सर्वात्म भाव से श्रीहरि की शरण में जायँ, क्यों कि हरिस्मृति सम्पूर्ण विपत्तियों को, सम्पूर्ण विघ्न बाधाओं को टाल देती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बाणासुर की पुत्री ऊषा श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध पर आसक्त हो गई। उसकी सखी योगिनी चित्तरेखा अपने योग बल से शैया सहित अनिरुद्ध को द्वारका से शोणितपुर उठा लायी। बाणासुर को जब इस प्रणय-लीला का पता चला तो उसने युद्ध में अनिरुद्ध को पकड़कर कारावास में बंद कर दिया। नारद जी से समाचार सुनकर समस्त यादव श्रीकृष्ण के नेतृत्व में शोणितपुर युद्ध करने आये। दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ। अपने भक्त बाणासुर के प्रेम से शंकर जी भी श्रीकृष्ण भगवान् से लड़ने आये। दोनों ओर से दिव्यास्त्र छोड़े गये। अन्त में शिव जी ने अपना माहेश्वर ज्वर छोड़ा। इधर भगवान् ने भी वैष्णव ज्वर छोड़ दिया। वैष्णव ज्वर से परास्त होकर माहेश्वर ज्वर शरणागत वत्सल श्रीकृष्ण की शरण में आया और अत्यंत दीन होकर भगवान् की स्तुति करने लगा।

भगवान् की स्तुति करते हुए माहेश्वरज्वर कह रहा है—"प्रभो! मेरी शक्ति का तो अंत है, मैं तो पापी पुरुषों पर ही अपना प्रभाव दिखा सकता हूँ। किन्तु आपकी शक्ति का कोई अंत नहीं, आप अपरिमित शक्ति वाले हैं। मैं तो स्वयं ही एक अल्पात्मा हूँ, आप परमात्मा हैं, सबके अन्त-

रात्मा हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं। ज्वर तो असंख्य हैं, किन्तु आप एक, अद्वय, केवल तथा एकमात्र हैं। मैं तो अल्प ज्ञान वाला हूँ, आप ज्ञान स्वरूप हैं, ज्ञान घन हैं। मेरा तो कोई कारण है, किन्तु आप सबके कारण हैं। इस जगत् की उत्पत्ति भी आपसे है, स्थिति भी और प्रलय भी। देवता, देवेन्द्र, लोकपाल मनु, मन्वन्तरावतार ऋषि मुनि सभी अधिकारारूढ़ हैं, किन्तु आप तो सब को अधिकार प्रदान करने वाले हैं, स्वयं सर्व भाँति से सर्वाधिकार शून्य हैं। आप स्वयं शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। पर ब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम हैं। अतः आपके पाद पद्मों मे मेरा प्रणाम है।

स्वामिन्! कोई काल को इस जगत् का कारण बताते हैं। वे कहते हैं काल आने पर ही सब कुछ अपने आप होने लगता है। काल आने पर बच्चा माँ के उदर से उत्पन्न हो जाता है। काल आने पर फल पुष्प वृक्षों पर लग जाते हैं।

कोई कहते हैं—"दैव ही प्रधान है, जो होना होगा अवश्य होगा, उसे कोई मेंट नहीं सकता। दैव का विधान अटल है, दैव के विधान में कोई हस्तक्षेप कर ही नहीं सकता। सम्पूर्ण संसार दैवाधीन है। दैवाधीन मिदं जगत्। कोई कहते हैं—कर्म प्रधान यह विश्व है, जो कोई जैसा करता है वैसा फल पाता है। पूर्व जन्मों में जिसने शुभाशुभ कार्य किये होंगे, उन्हें इस जन्म में भोगोगे। अब जो करोगे आगे के जन्मों में भोगोगे। कर्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सब कर्म की ही लीला है।

कोई कहते हैं—जीव ही सब कुछ करता धरता है, जीव ही आत्मा है, इस विश्व में जीव के अतिरिक्त न कोई कर्ता है न भोक्ता। कर्ता भोक्ता सब जीव ही है। यह जगत् जीवमय है। बाल के अग्र भाग के बराबर भी कोई ऐसा स्थान नहीं

है जहाँ जीव न हो। निर्जीव कोई पदार्थ ही नहीं। कहीं जीव व्यक्त रूप में है, कहीं अव्यक्तरूप में है, हम ऐसी किसी वस्तु की भी कल्पना नहीं कर सकते जहाँ जीव न हो। "सर्वं जीव मयं जगत्।"

कुछ लोग कहते हैं—सब कुछ स्वभाव से हो रहा है। सब अपने अपने स्वभाव से विवश हैं। तृण से ब्रह्मा पर्यन्त सभी अपने स्वभाव का ही अनुसरण करते हैं। देवता हों, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, गुह्यक, भूत, प्रेत, पिशाच, मनुष्य, स्त्री, बालक, वृद्ध संसार के सभी प्राणी स्वभाव के अधीन हैं। किसी किसी का कहना है यह जगत् प्रपञ्च है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इनके दो भेद हैं, एक तो स्थूल भेद जो हमें दिखाई देते हैं, जिनका अनुभव हम व्यवहार मे नित्य करते हैं। एक सूक्ष्म भूत जा इन स्थूल भूतों के कारण हैं। वे दिखाई नहीं देते। यथार्थ में वे सूक्ष्म भूत ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं।

कुछ लोगों का कहना है. केवल भूतों से ही कुछ नहीं होने का। अकेला कोई कुछ कर नहीं सकता। शरीर,सूत्रात्मा,अहंकार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन और पंचभूत, इन सबके संघात से, इन सब के मिलने जुलने से जो लिङ्गदेह निर्माण होता है। उस देह में जो बीज की भाँति पैदा होना, बढ़ना आदि है यही जगत् का कारण है। किन्तु प्रभो! मेरा कहना है कि यह सब आप की माया है, इन सब रूपों में आप ही भासते हैं, यह सब ही मायिक हैं, आप माया से परे हैं, आप इन सब से सर्वथा रहित हैं। आप में विकार नहीं, क्षय नहीं, उत्पन्न होना तथा मरना नहीं, आप निर्विकल्प, निराकार तथा निर्द्वन्द्व हैं। आप के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो ! आप इस जगत् के रक्षक हैं, पालक हैं, त्राता हैं। आप धर्म की रक्षा के निमित्त, साधु जनों के हितार्थ, तथा भक्तों को आनन्द देने के निमित्त अनेक अवतार धारण करते हैं, उन अवतारों में आप देवताओं के दुःसह दुःखों को दूर करते हैं, साधुओं का परित्राण करते हैं तथा अयोग्यों द्वारा उच्छृङ्खल हुई लोक मर्यादा को पुनः स्थापित करते हैं उसकी भली प्रकार से रक्षा करते हैं। जो दुष्कृति हैं, पापी हैं, भू के भार को बढ़ानेवाले हैं, जो सदा कुपथ का अनुसरण करते हैं, भ्रष्टमार्गगामी हैं, दम्भ और हिंसा द्वारा जो अपनी आजीविका चलाते हैं उन क्रूरकर्मा कुमार्ग गामी खलों का संहार करते हैं, उन दुष्कृतियों का विनाश करते हैं। आप का यह श्रीकृष्णावतार भी इसी हेतु से हुआ है। पृथिवी पर जब बहुत से दुर्मद प्रबल पराक्रमी असुर राजा रूप में अवतीर्ण हो गये और उनका भार बहुत बढ़ गया, पृथिवी उसे सम्हालने में समर्थ न हुई तब आप भू का भार उतारने के लिये इस अवनीपर अवतरित हुए हैं।

प्रभो ! मैं तो शिवजी का एक अकिंचन अनुचर हूँ। उनके ही द्वारा मैं छोड़ा गया था, किन्तु आपने प्रत्युत्तर में वैष्णव ज्वर को छोड़ दिया, वैष्णव ज्वर शान्त तो है, किन्तु है अत्यंत ही उग्र, साथ ही वह अत्यंत भयानक भी है। उसका तेज अत्यन्त ही दुःसह है। उसके प्रबल तेज को सहन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, इसके प्रबल संताप से अत्यंत संतप्त होकर आपकी शरण में आया हूँ। जब कोई ताप से संतप्त होता है तो शीतलता की शरण में जाता है। संसार में सभी प्राणियों को शीतलता शांति और सुख आप के ही द्वारा प्राप्त हो सकता है। प्राणी तभी तक संतप्त रहता है, जब तक वह आप की शरण में नहीं जाता। आपकी शरण में विषयाभिलाषी कभी जा ही नहीं सकता।

क्योंकि उसे नित्य नित्य नये नये विषयों के उपभोग की लालसा लगी रहती है, विषयों से तृप्ति तो होती नहीं प्रत्युत दिनों दिन अधिकाधिक लालसा बढ़ती ही जाती है। इसी आशा रूपी रस्सी में जकड़े रहने के कारण देहधारी जीव आपके चरणों की शरण में नहीं जाते। इसी कारण नाना क्लेश उठाते रहते हैं। मैं संसार में नाना क्लेश उठाते उठाते क्लांत हो गया हूँ। अब सर्वत्र से निराश होकर मैंने आपके पावन पादपद्मों का सहारा लिया है, आपके चरणारविन्दों का आश्रय ग्रहण किया है। अब मुझे विश्वास हो गया कि मैं सभी ताप सन्तापों से सदा के लिये मुक्त हो जाऊँगा। आपका द्वार अमोघद्वार है। यहाँ आकर आज तक कोई भी निराश नहीं हुआ। जब सभी की आशायें पूर्ण हुई हैं, तो मेरी आशा अपूर्ण कैसे रहेगी। वह पूरी होगी और अवश्य होगी। इसी आशा से मैं आप के पावन पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने माहेश्वर ज्वर कृत श्रीकृष्ण स्तुति कही। अब जैसे शिवजी ने श्रीकृष्ण भगवान की स्तुति की है, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आशा है आप सब उसे शान्त चित्त से श्रवण करने की कृपा करेंगे।

### छप्पय

काल, दैव, तनु, करम, जीव, सबभूत, सूत्र तुम।
भूतेन्द्रिय संघात रहित सब तैं पुरुषोत्तम॥
देव, साधु सुख दैन करन मरजादा थापन।
लै नाना अवतार करो कल्यान ज्ञान घन॥
तव ज्वर तैं संतप्त हैं, शरन गहीं मैंने विभो।
तब शीतल पद पदुम गहि, शान्ति लही सबने प्रभो॥

पद

नाथ ! तव ज्वर तैं हौं अति पीड़ित ।
तुम केवल कारन, करुनाकर, जग तुमतैं सब पालित ॥१॥
काल, करम, तनु सूत्र, जीव विभु, कोई कहैं स्वचालित ।
अपर कहैं संघात सबनिको, सब तव माया लालित ॥२॥
लै अवतार विविध विधि स्वामी, असुरनि करौ प्रताड़ित ।
जुग जुग में प्रभु दरसन करिकें, होवैं जीव कृतारथ ॥३॥
तब तक ताप होइ प्रानी कूँ, होहि न ज्ञान जथारथ ।
तव चरननि में जबई पहुँचे, होहि सुखी प्रभु पालित ॥४॥

## माहेश्वरज्वरकृत श्रीकृष्ण स्तुति

ज्वर उवाच

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं,
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं,
यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥१॥

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो,
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस्,
त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२॥

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै,
र्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् ,
जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥३॥

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन,
शान्तोग्रेणात्युल्वणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं,
नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ॥४॥

# श्रीरुद्रकृत श्रीकृष्ण स्तुति

( १०६ )

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये।
यं पश्यन्त्य मलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥
(श्र.भा० १० स्क० ६३ श्र० ३४ श्लो०)

छप्पय

*पुनि बोले श्रीरुद्र–आपु व्यापक अज अच्युत।*
*कही नाभि आकाश अगिनि मुख वीरज ततसुत ॥*
*दिशा श्रवन सिर स्वरग चरन भू चन्द्र कह्यो मन।*
*अहंकार शिव सूर्य नेत्र तव उदर जलायन ॥*
*भुज सुरपति कच मेघ हैं, अजधी ओषधि रोम तन।*
*लिंग प्रजापति धरम हिय, हो जगमय रुक्मिनि रमन ॥*

ब्रह्मा विष्णु तथा रुद्र ये तीनों ही एक उन्हीं सच्चिदानन्द भगवान् के रूप हैं, उनमें कोई भेद नहीं, किन्तु जैसे नाटक मंडली में तीनों सगे भाई रहते हैं, वे आपस मे प्रेम भी करते

---

* भगवान की स्तुति करते हुए श्री महादेव जी कहते हैं—भगवन्! आप वेद वाङ्मय में निगूढ़ है छिपे हुए हैं-आप ही परब्रह्म तथा परम ज्योति स्वरूप हैं। निर्मल चित्त वाले आपको आकाश के सदृश व्यापक तथा एकमात्र निर्मल देखते हैं।

हैं किन्तु जब वे रंग मंच पर परस्पर में शत्रु का अभिनय करते हैं, तो क्रोध में भर कर कैसा युद्ध करते हैं। नाटक समाप्त हो जाने पर फिर हिल मिलकर प्रेम पूर्वक बातें करते हैं। एक दूसरे का आदर सत्कार करते हैं। इसी प्रकार भगवान् लीला के लिये शिव जी से युद्ध करते हैं, पीछे एक हो जाते हैं यही भगवान् की क्रीड़ा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्री कृष्ण भगवान् और महादेव जी में युद्ध हुआ और दोनों ओर से ज्वर छोड़े गये। माहेश्वर ज्वर भगवान् की शरण में गया। तब भगवान् ने उसे अभय प्रदान किया, उसी समय बाणासुर युद्ध भूमि में आया, उसने सहस्र बाहुओं से भगवान् के ऊपर बाणों की घन घोर वर्षा की। तब भगवान् ने उसकी भुजाओं को अपने सुदर्शन चक्र से काटना आरम्भ किया। काटते काटते जब चार भुजायें ही उसकी शेष रह गयीं, तब भक्तवत्सल भगवान् भोले नाथ चक्र सुदर्शन धारी भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की स्तुति करने लगे।

भगवान् की स्तुति करते हुए श्री रुद्र भगवान् कह रहे हैं— प्रभो आप परम ज्योति स्वरूप हैं, आपके ही प्रकाश से जगत् प्रकाशित हो रहा है। आप परब्रह्म हैं। आप इतने छिपे हुए हैं, कि वेद भी आपका भेद नहीं जानते। वेद भी नेति नेति कह कर आपका वर्णन करते हैं। आप किसी एक स्थान में सीमित नहीं। अणु परमाणु में सर्वत्र व्याप्त हैं, विश्व ब्रह्माण्ड में कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ आप न हों। आपमें किसी भी प्रकार का द्रव्य कृत, गुण कृत तथा कर्मादि कृत मल नहीं है। आप गुणातीत विशुद्ध तथा निर्मल हैं। आकाश की भाँति सब में रहते हुए भी सबसे निर्लेप हैं, आप केवल मात्र अद्वय तथा एक ही हैं। सब कोई आपको देख नहीं सकते, जो विशुद्ध अन्तःकरण वाले

महात्मा हैं, वे ही आपका साक्षात्कार कर सकते है। क्योंकि आप अपनी ही योग माया से सदा आवृत रहते हैं। ·

यह विश्व ब्रह्माण्ड ही आप का शरीर है, आप विश्वम्भर होते हुए भी विश्वरूप हैं। यह जो आकाश है, यह आपके नाभि स्थानाय है। हुतभुक् अग्निदेव ही आप के बोलने और खाने पीने के मुख हैं। जल ही आपका वीर्य पराक्रम है। स्वर्ग शीर्ष स्थानीय है। दशों दिशायें ये ही आपके श्रवण हैं। पृथिवी आप के चरणारविन्द हैं। चन्द्रमा मन स्थानीय हैं। सर्व प्रकाशक सूर्य ही आप के नेत्र हैं। मैं जो रुद्र हूँ, जिसे आपने प्रलय करने का कार्य सौंपा है, आपके अहंकार के स्थान मे हूँ। यह जल से परिपूर्ण समुद्र ही आप का उदर है। देवताओं के इन्द्र नाक पति शचीपति ही आपके बाहु है। ये जो फल लगने पर पक कर गिरने वाली अन्नादि छोटी छोटी ओषधियाँ है, वे ही आपके रोमकूप हैं। जल को बरसाने वाले मेघ ही आपके काले काले केश हैं। वेद गर्भ चतुर्मुख· ब्रह्मा जी ही आप के बुद्धि स्थानीय हैं। प्रजापति ही आपकी उपस्थेन्द्रिय हैं। जगत को धारण करने वाले धर्म ही आपके हृदय हैं। कहाँ तक गिनावें·यह जो चराचर विश्व है वही आपका शरीर है। आप से जगत भिन्न नहीं है किन्तु आप सबसे निर्लिप्त हैं। पंडित जन भिन्न-भिन्न वस्तुओं से आपके अङ्गों की कल्पना करते हैं। वास्तव में तो आप परम पुरुष परमात्मा सबसे पृथक् हैं।

प्रभो! आपने जो अवतार धारण किया है, वह धर्म की वृद्धि और अधर्म के दबाने के निमित्त ही किया है। आपके अवनि पर अवतरित होने से अखिल विश्व का अभ्युदय होगा। हे अक्षुण्ण तेजोमय स्वामिन्! सर्वत्र आपके तेज से ही कार्य हो रहा है,

आप का प्रभाव ही सर्वत्र व्याप्त है। हम लोग जो इन्द्र, वरुण कुवेर, प्रजापति, मनु, सप्तर्षि तथा अन्यान्य अधिकार वर्ग के लोग हैं, वे सब आप के प्रभाव से प्रभावित होकर ही समस्त लोकों का सातों भुवनों का प्रतिपालन कर रहे हैं।

हे देव! आप अद्वय हैं, केवल हैं, आप ही सनातन आदि पुरुष हैं। आप के अतिरिक्त और कोई नहीं आप अद्वितीय हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे जो तुरीय अवस्था है, वह तुरीय आप ही हैं; संसार में सभी अन्य के प्रकाश द्वारा प्रकाशित होते हैं, किन्तु आप स्वयं प्रकाश हैं, आप को अन्य किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। यह जो कार्य है किसी न किसी कारण से होता है। सभी का कोई न कोई कारण है, किन्तु आप का कारण कोई नहीं, आप ही सबके कारण हैं। आप का कोई ईश्वर नहीं, आप ही सबके ईश्वर हैं, इसीलिये आप सर्वेश्वर कहलाते हैं।

प्रभो! आपके बिना किसी का अस्तित्व नहीं किसी का प्रकाश नहीं। आप ही नाना योनियो में त्रिगुणों के विकार रूप से देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतंग आदि योनियों में विभिन्न रूपों से प्रतीत होते हैं।

स्वामिन्! ये गुण आप से ही उत्पन्न हुए हैं, आप इन गुणों को तथा गुणाभिमानी जीवों को गुणों से आच्छादित होकर भी प्रकाशित कर रहे हैं। जैसे सूर्य के ही प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहे हैं। सूर्य को भी मेघ ढक लेते हैं, सूर्य को आच्छादित कर लेते हैं, तो क्या उन मेघों का सूर्य से पृथक कोई अस्तित्व है। नहीं, मेघ सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं, वे सूर्य को ढक लेते हैं। फिर आज आकाश में मेघ छाये हुए हैं, इस बात को प्रकाशित तो सूर्य ही करते हैं। अपनी छाया रूप मेघों से आच्छादित

होने पर भी उस छाया का तथा भिन्न-भिन्न रूपों का ज्ञान सूर्य के ही द्वारा होता है। अतः आप ही सबके साक्षी हैं आप ही सबके जनक हैं, किन्तु सबसे निःसंग तथा निर्लिप्त हैं।

स्वामिन्! संसार में जन्मलेना, मरना, आना जाना भोगों की इच्छा से वासनाओं की आसक्ति से होता है। आसक्ति होती है मोह से। आपकी मोहिनी माया जिनकी बुद्धि को विमोहित कर लेती है, वे ही संसार में फँसते हैं। वे सोचते हैं— "यह मेरी पत्नी है, मैं इसका पालन कर्ता पति हूँ, इसके भरण पोषण का, रक्षा का भार मेरे ही ऊपर है। ये मेरे पुत्र पुत्री हैं, यदि मैं न रहूँगा तो कौन इनकी रक्षा करेगा, कौन इन्हें पढ़ावेगा लिखावेगा, कौन योग्य बनावेगा। यह मेरा घर है, यह मेरी भूमि है, दूसरा इसे ले ही कैसे सकता है, जो इसे लेने को हाथ बढ़ावेगा उसके हाथ को तोड़ दूँगा, जो इसकी ओर लालच भरी आँख लगावेगा उसकी आँखों को फोड़दूँगा।" इस प्रकार का जिन्हें मोह है. ऐसे जो सुत, कलत्र तथा गृह में आसक्त हैं वे ही इस संसार सागर में पुनः पुनः डूबते हैं उतरते हैं।

प्रभो! आपने यह कैसा सुन्दर मानुष शरीर दिया है। इसमें सभी इन्द्रियाँ हैं, अन्तः करण है, सत् असत् का निर्णय करने वाली बुद्धि है। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न शरीर को पाकर भी जो तुच्छ विषयों में फँसे रहते हैं, अनित्य विषय भोगों को जुटाने के लिये ही सतत प्रयत्न करते रहते हैं, संसार सागर से पार करने वाले आपके पाद पद्मों का प्रेम पूर्वक पूजन नहीं करते, उन अनुपम चरणारविन्दों में अनुराग नहीं रखते। वे मानों आपको माया द्वारा अपने आप ही ठगे गये। वे दया के पात्र हैं, उनकी दशा पर सोचने के अतिरिक्त और क्या

किया जा सकता है। वे परमार्थ पथ से हट गये। उत्तम फल से वञ्चित हो गये।

प्रभो ! ये संसारी भोग तो ऊपर से देखने में लुभावने लगते हैं, किन्तु वास्तव में वे हैं विष के समान। इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले पदार्थों से क्षण भर तो सुख सा प्रतीत होता है, किन्तु परिणाम में ये दुःख ही देने वाले होते हैं। आप सुख के सागर, आनन्द के आलय, शान्ति के निधान, मंगल की मूर्ति तथा कल्याण कारक को छोड़कर जो दुःख स्वरूप इन्द्रिय सुखों के लिये प्रयत्न करते हैं, वे मानों रत्न को छोड़ कर कांच के टुकड़े को अपना रहे हैं, अमृत को त्याग कर विष भक्षण कर रहे हैं। ऐसे पुरुष अत्यंत शोचनीय हैं।

हे देव ! सबके स्वामी तो आप ही हैं। मुझे रुद्र पद पर आपने ही बिठाया है, प्रजा की उत्पत्ति का कार्य ब्रह्मा जी को आपने ही सौंपा है, वर्षा आदि मंगल कृत्य करने का काम देवताओं को आपने ही दिया है, लोक पालों को उनके पद पर आपने ही प्रतिष्ठित किया है। अतः हम सब ब्रह्मादि देव ऋषि मुनिगण आपके शरणागत हैं। आप ही हम सबकी आत्मा हैं, आप सम्पूर्ण विश्व की आत्मा होने से विश्वात्मा कहलाते हैं। आप ही सबके सुहृद् तथा प्रियतम हैं, आप ही सबके स्वामी प्रभु तथा परमेश्वर हैं। आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे स्वामिन् ! आपही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के प्रधान कारण हैं। आप सर्वत्र समान भाव से व्याप्त हैं, आप अत्यन्त ही सुखदायी तथा परम शान्त स्वरूप हैं, आपही सबके सुहृद्, तथा सच्चे सखा और शुभचिन्तक है। आपही सबकी अन्तरात्मा हैं, आपही सबके ईश्वर तथा स्वामी हैं। आपके

समान अन्य कोई है ही नहीं अतः आप अद्वितीय हैं । आपही इस दृश्य जगत् के अधिष्ठान हैं। संसार सागर से पार होने के निमित्त सभी आपके पादपद्मों का आश्रय लेते हैं, सभी बुद्धिमान सज्जन पुरुष प्रेम की प्राप्ति के लिये आपके चरणारविन्दों का भजन करते हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

प्रभो ! यह वाणासुर मेरा अनुचर है, शिष्य सेवक तथा परम भक्त है। यह मेरा अनुगत है मेरी शरण में आया है। प्रपन्न हुआ है। मैंने भी इसे अभय, प्रदान कर दी है। इसीलिये यह इतना निर्भय हो गया है। स्वामिन् ! आप इसका वध न करें संग्राम में इसे मारें नहीं। आप अपने चक्रसुदर्शन से इसकी सहस्रवाहुओं को काट रहे हैं। अब तो केवल चार ही शेष रह गयी हैं। इसके प्रपितामह प्रह्लाद पर जैसे आपने कृपा की, ऐसे ही इस पर भी आप कृपा करें, इसे भी अपनावें। इस पर भी अपनी अनुग्रह की दृष्टि करें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार श्रीमहादेवजी ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने वाणासुर को अभय प्रदान किया। उसके चार हाथ छोड़ दिये, उसे अजर अमर होने का वर दिया और महादेवजी के मुख्य गणों में उसकी गणना कर दी। उसे शिवजी का मुख्य पार्षद बना दिया। यह मैंने श्रीमहादेव कृत श्रीकृष्ण स्तुति कही। अब जैसे राजा नृग ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

### छप्पय

धरम हेतु अवतरित आपु अद्वय सरबेश्वर।
सुरनर तिरियक योनि माहिँ प्रकटैं परमेश्वर॥
माया मोहित जीव जनम पुनि पुनि जगलेवैं।
पान करैं बिष बिषय न तव पद अम्मृत सेवैं॥
शान्त सरल सब के सुहृद, अधिष्ठान अद्वय विभो।
बाणासुर मम भक्त है, कृपा करैं तापै प्रभो॥

### पद

छिपे तुम बेदनि में विश्वेश्वर।
दृश्य जगत ही देह तिहारा, तुम सब जगके ईश्वर॥१॥
धरम अभ्युदय करन हेतु हरि, प्रकटी प्रभु परमेश्वर।
धरम थापि अधरमहिँ दबाओ, माया मेटि महेश्वर॥२॥
ज्यों प्रकटावे रवि मेघनिकूँ, ते ढाकें दिवसेश्वर।
तोऊ करै प्रकाशित मघकूँ, त्यों जग रवि मायेश्वर॥३॥
माया मोहित माने निजकूँ, सुत, कलत्र भवनेश्वर।
अम्मृत सरिस त्यागि तव चरननि, विष पावैं विषयेश्वर॥४॥
हौं हर, सुर, अज, ऋषि, मुनि सब जग, शरन गहैं सरबेश्वर।
सबके सुहृद्, शान्त, सर्वात्मा, भवतारक भुवनेश्वर॥५॥
अज अनादि अच्युत अवतारी, अगुन अलख अखिलेश्वर।
बाणासुर पै किरपा कीजै, जगन्नाथ जगदीश्वर॥६॥

—:ॐ:—

## रुद्रकृत श्रीकृष्ण स्तुति

श्रीरुद्र उवाच

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥१॥

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो,
द्यौः शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा,
अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥२॥

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः,
केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः,
स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ॥३॥

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्,
धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता,
विभावयामो भुवनानि सप्त ॥४॥

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीय,

स्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ।

प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं,

स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥५॥

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया,

छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।

एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्व,

मात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥६॥

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥७॥

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।

यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥८॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।

विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥९॥

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।

सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥१०॥

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं,

समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं,
भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥११॥
अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती,
मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद् भवतः प्रसादो,
यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥१२॥

# नृगकृत श्रीकृष्ण स्तुति

( १०७ )

सत्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा
योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६४ अ० २६ श्लो० )

छप्पय

*गिरिगिट नृप नृग भये शाप द्वै विप्रनि दीन्हों ।*
*तिनिको पुनि उद्धार कृष्ण द्वारावति कीन्हों ॥*
*श्याम परसतैं पाप देह तुरतहिँ तजि दीन्हीं ।*
*दिव्य देह धरि तबहिँ कृष्ण की इस्तुति कीन्हीं ॥*
*जिनि लखि भव बन्धन कटै, करि किरपा दीये दरस ।*
*जगन्नाथ जगदीश प्रभु, जग जीवन जग रसिक रस ॥*

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए महाराज नृग कह रहे हैं—"हे भगवन् हे विभो ! हे अधोक्षज ! आपका दर्शन तो उन्हीं लोगों को हुआ करता है, जिनका संसार चक्र छूटने वाला होता है, क्योंकि आप परमात्मा हैं,

भक्त वत्सल भगवान् कृपा के सागर हैं, सत्य प्रतिज्ञ और सर्वेश्वर प्रणत प्रण पालक हैं। जब जिस जीव के उद्धार का जहाँ समय आता है, तब तहाँ पहुँचकर प्रभु उसका उद्धार करते हैं। उसके भव बन्धन को काटते हैं। जब तक जिसके उद्धार का समय न आवे, तब तक उसे जैसी भी परिस्थिति प्राप्त हो, उसी में रहकर स्तुति प्रार्थना करते हुए काल क्षेप करना चाहिये। समय आने पर सर्वेश्वर स्वयं दर्शन देंगे और भव सागर में भटकते हुए प्राणी को अपना लेंगे। तब कृतज्ञता के भार से दबा हुआ व्यक्ति अवाङ मनस् गोचर उन प्रभु को उन्हीं की कृपा से स्तुति ही कर सकता है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! परमदानी महाराज नृग को एक गौ के झगड़े में दो क्रुद्ध हुए ब्राह्मणों ने कृकलास-गिरगिट होने का शाप दे दिया था। इससे वे बहुत दिनों तक गिरगिट बने द्वारिका के समीप एक कूप में पड़े रहे। यादव कुमारों ने कुतूहलवश उन्हें निकालना चाहा, किन्तु जब वे किसी प्रकार न निकले तो बालक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी को बुलालाये। भगवान् ने अपने बायें हाथ से अनायास ही उन्हें बाहर निकाल लिया। भगवान् के स्पर्शमात्र से ही वे गिरगिट शरीर को त्याग कर दिव्य पुरुष बन गये। उन्होंने भगवान् को अपना सम्पूर्ण पूर्व वृत्तान्त सुनाया और फिर श्रद्धा के सहित भगवान् की स्तुति की।

---

आपका ध्यान विमल बुद्धि वाले योगेश्वर गण अपनी उपनिषद् रूप दृष्टि से अपने हृदय में किया करते हैं। ऐसे आप अनेक व्यसनों के कारण अन्धबुद्धि बने मुझ मलिन मति के सम्मुख स्वयं साक्षात् रूप से प्रकट कैसे हो गये ?

भगवान की स्तुति करते हुये महाराज नृग कह रहे हैं—"प्रभो! आप साधारण पुरुष नहीं हैं, परम पुरुष हैं। आप जीवात्मा नहीं परमात्मा हैं। आपका दर्शन सुलभ नहीं दुर्लभ है। सब कोई आपका दर्शन प्राप्त भी नहीं कर सकते। जिनकी बुद्धि विमल बन गयी है, जिनका चित्त विशुद्ध बन गया है, ऐसे साधारण योगी भी नहीं बड़े बड़े योगेश्वर गण अपनी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म दृष्टि से आपके हृदय कमल में ध्यान करते हैं। इस प्रकार बड़े कष्ट से अत्यन्त प्रयत्न से शुद्ध अन्तः करण वालों के हृदय में केवल मनोमयी मूर्ति का साक्षात्कार होता है। ऐसे आप मुझ व्यसनान्ध बुद्धि के सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। मैं तो ऐसी पाप योनी में पड़ा था, कि स्वयं आपके सम्मुख जा भी नहीं सकता था, किसी प्रकार आपका पाद स्पर्श कर ही नहीं सकता था। यदि प्रयत्न करता भी तो रक्षक गण वहीं मेरी लीला समाप्त कर देते। मैं सभी प्रकार से दीन हीन मति मलीन साधन विहीन जीव था, किन्तु आपतो प्रभो! कृपा के सागर हैं, दीन बन्धु हैं, शरणागत वत्सल हैं। आपने स्वयं ही पधार कर, मेरे स्थान पर ही आकर, मुझे दर्शन दिये, मेरा स्पर्श किया और मेरे पाप योनि से छुड़ाकर, देवताओं के समान--दिव्य शरीर दिया। इससे मुझे विश्वास हो गया, कि अब मुझे संसार बन्धन में फिर नहीं बँधना पड़ेगा। फिर मुझे आवागमन के चक्कर में न फँसना पड़ेगा। अब मेरा जन्म-मरण का क्रम समाप्त हो जायगा। आपके दर्शनों के पश्चात् तो भवबन्धन रहता ही नहीं। कारण कि जिनका संसार चक्र निवृत्त होने का समय होता है, उन्हीं को आपके दर्शन होते हैं। सर्व साधारण को आप सर्वत्र समान रूप से रहने वाले व्यापक ब्रह्म के दर्शन होते ही नहीं। आप

मेरे नेत्रों के सम्मुख आगये, मुझे आपके देव दुर्लभ दर्शन हो गये, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

हे प्रभो! आप ब्रह्मादि समस्त देवताओं के भी देवता हैं। आप इस सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र स्वामी हैं, ईश हैं, नाथ हैं। आप गौओं के, इन्द्रियों के, पृथिवी के स्वामी हैं, अधिपति हैं। आप प्रकृति पुरुष से परे पुरुषोत्तम हैं। आप क्षीर सागर में शेष की शैया पर शेषशायी नारायण होकर शयन करते हैं। आप समस्त इन्द्रियों और उनके विषयों के देवताओं के स्वामी हैं। हे अधोक्षज! आपकी कीर्ति अजर अमर तथा अक्षय है। हे अच्युत! आप कभी च्युत नहीं होते, अपने प्रण पर सदा सर्वदा डटे ही रहते हैं। संसार की सभी वस्तुयें नाशवान् हैं, किन्तु एक मात्र आप ही अविनाशी हैं। आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे कृष्णचन्द्र! अब मेरे समस्त पाप ताप आपके स्पर्श मात्र से भस्म हो गये। अब मैं दिव्य लोक में जा रहा हूँ। आप मुझे वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान करें और ऐसी कृपा करें कि मैं किसी भी लोक में रहूँ, किसी भी योनि में रहूँ, किसी भी दशा में रहूँ, मेरा चित्त सदा आपके चरणारविन्द का चंचरीक बना रहे। मेरा मन मधुप आप के पाद पद्मों में मँड़राता रहे।

भगवन्! आप इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति के एक मात्र स्थान हैं, आप साक्षात् स्वयं भगवान हैं। आप परब्रह्म है। जो माया इस सम्पूर्ण चराचर को रचती है, जो बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी तथा योगियों को भी चक्कर में डाल देती है। जिसके प्रकृति, माया शक्ति आदि अनेक रूप हैं। उन अनन्त शक्तियों से आप संयुक्त हैं। आप सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं। सजल मेघ के सदृश आपका सुंदर श्याम वर्ण है।

आप महाराज वसुदेव जी के घरमें उनके पुत्र रूप में प्रकट हुये हैं। आप सर्वत्र वसते हैं, घट घट निवास करते हैं। आप समस्त योगों के, योगेश्वरों के, स्वामी हैं। ऐसे आप अनन्त शक्ति वाले, अप्रमेय वलवाले वासुदेव भगवान् के पाद पद्मों में मेरा बारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार नृग ने भगवान् की स्तुति की और हाथ जोड़कर सिर झुकाकर भगवान् से जाने की आज्ञा माँगी। भगवान् ने जब उन्हें अनुमति देदी, तो उन्होंने श्रद्धा भक्ति सहित अश्रु पूर्ण नेत्रों से भगवान् को बारम्बार प्रणाम किया, उनकी तीन परिक्रमा की और सब के देखते देखते दिव्य विमान पर चढ़कर दिव्य लोकों में चले गये। यह मैंने महाराज नृगकृत श्रीकृष्ण स्तुति कही। अब जैसे कौरवों ने श्री बलभद्र जी की स्तुति की उसे मैं आपसे कहूँगा।

छप्पय

हे गोविंद गोपाल देव अच्युत पुरुषोत्तम।
हृषीकेश हे कृष्ण नरायन नाथ नरोत्तम॥
भगवन्! जहँ जहँ रहूँ लगै चित चरननि माहीं।
तव पद पदुमनि त्यागि वृत्तिमन अनत न जाहीं॥
वासुदेव प्रभु योग पति, सर्व भाव यादव अधिप।
इस्तुति करि नृग प्रेमतैं, दिव्य लोक कूँ गये नृप॥

## पद

दयानिधि दासहिँ दरसन दीये ।
जनम जनम मुनि जतन योगकरि, साधन अगनित कीये ॥१॥
मिलै न दरस बिना अनुकम्पा, चरन कमल रज लीये ।
ते खल पापी पामर प्रानी, दरस बिना जे जीये ॥२॥
नारायन गोविन्द जगत् पति, कृष्ण नाम जिनि लीये ।
धन्य भये ते जन अनुरागी, अमृत नाम तव पीये॥३॥

## नृगकृत श्रीकृष्ण स्तुति

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥१॥

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा,
योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः,
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥२॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥३॥

अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥४॥

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥५॥

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।
अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत् पश्यतां नृणाम् ॥६॥

# कौरवों द्वारा श्रीबलभद्रजी की स्तुति

( १०८ )

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥*
( श्रीभा० १० स्क० ६८ अ० ४४ श्लो० )

छप्पय

*दुरजोधन की सुता स्वयंवर माहीं आई।*
*कृष्ण तनय श्री साम्ब पकरि कें रथ बैठाई॥*
*कुमर कैदि करि लयो आइ बल आयसु दीन्हीं।*
*कौरव माने नहीं पुरी तिनि उलटी कीन्हीं॥*
*तब सब बल इस्तुति करें, कहें—राम तुम अमित बल।*
*छिमा करें अपराध प्रभु, संहारक खल प्रबल दल॥*

भगवान् अपने अंशों के सहित अवतार लेते हैं। श्रीरामावतार में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार रूपों से प्रकट हुए। श्री कृष्णावतार में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और

* कौरव गण भगवान् बलभद्र जी की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे राम! हे बलराम! हे अखिल जगत के आधार! हम सब आप के प्रभाव से अनभिज्ञ थे। हम मूढमति कुबुद्धिवालों के अपराध को आप क्षमा कर दीजिये।"

अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह से अवतरित हुए। संकर्षण भगवान् शेषावतार हैं। भगवान् के अभिन्न रूप हैं। उनकी भी गणना प्रधान दशावतारों में है। संकर्षण भगवान् अहंकार के अधिष्ठातृ देव हैं, अतः उनका कोप भी विलक्षण होता है। ये भगवान् की तामसी शक्ति के देव हैं। भगवत् स्वरूप ही हैं, अतः अन्य अवतारों के सदृश ये भी परम वन्दनीय, पूजनीय तथा आदरणीय हैं। जो इनकी स्तुति प्रार्थना करते हैं, वे सभी प्रकार के दुःखों से छूट जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! दुर्योधन की एक लक्ष्मणा नाम की पुत्री थी, उसका स्वयंवर किया गया। उसमें जाम्बवती तनय वासुदेव नन्दन श्री साम्ब भी गये। साम्ब के मन पर वह लड़की चढ़ गयी। उसने सोचा—"स्वयंवर में संभव है लड़की ने हमें वरण किया अथवा न भी किया, यह तो संदेह की बात है, अतः क्यों न हम अपने पिता की परिपाटी का अनुसरण करें। क्यों न कुमारी को बल पूर्वक पकड़ ले जायँ। यही सोचकर उसने बल पूर्वक कन्या का अपहरण किया। इस पर कौरवों ने कुपित होकर एक साथ कई महारथियों ने प्रहार करके साम्ब को पकड़ लिया और उसे कारावास में बन्द कर दिया। श्री नारदजी से समाचार सुनकर बलरामजी कौरवों को समझाने आये। कौरवों ने उनकी बात न मानी कुछ न कहने योग्य बातें कहीं। इस पर क्रुद्ध होकर बलदेव जी अपने हल से हस्तिनापुर को उलटने को तैयार हो गये। तब सब ने साम्ब और लक्ष्मणा को लेकर विपुल दहेज के साथ आकर बलदेवजी के चरण पकड़े और उनकी स्तुति की।

कौरवगण बलदेवजी की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"प्रभो ! हमने तो आप को अपने ही समान एक क्षत्रिय समझा था।

इसीलिये बराबरी का समझकर ऐसी धृष्टता की। हम आपके प्रभाव को नहीं जानते थे। हे राम! हे बलराम! हे संकर्षण! आप तो अवतार हैं। यह बात हमें अब मालूम हुई। आप हमारे ही नहीं सम्पूर्ण लोक के स्वामी हैं। आप इस चराचर विश्व के एकमात्र आधार हैं। हमने मूर्खता वश आपको ऐसे कुवाच्य कहे। हम मूढ़मति हैं। हम संसारी व्यक्ति हैं। अक्षत् बुद्धि होने से ही हमसे यह अक्षम्य अपराध बन गया। हम कुबुद्धियों के इस अपराध को आप क्षमा कर दें।

हे देव! इस जगत् की उत्पत्ति आप के ही द्वारा होती है, आप ही सृष्टि रचना के समय ब्रह्मा बन जाते हैं। आप ही इस सब रची हुई सृष्टि का पालन पोषण करते हैं। पालन के समय आप ही विष्णु कहलाते हैं और आप ही इस सब का अंतमें संहार भी करते हैं। प्रलय की वेला में आप ही श्री रुद्र बन जाते हैं। सब के एक मात्र कारण आप ही हैं। यह जगत् आप के आधार पर ही टिका है, किन्तु आप का कोई अन्य आधार नहीं। आप निराधार निराश्रय हैं।"

प्रभो! आप आत्माराम पूर्ण काम नित्य तृप्त तथा निरीह हैं। फिर भी मन विनोद के लिये, लीला के निमित्त आप जगत् की रचना करते हैं। जब आप क्रीडा करने लगते हैं तब यह चराचर विश्व आपके खेलने का खिलौना बन जाता है। आप ही खिलौने को रचने वाले हैं और आप ही उससे खेलने वाले भी हैं।

हे देवाधिदेव! आप के सहस्र फण हैं। उन पर यह सम्पूर्ण भू मंडल सरसों की भाँति रखा हुआ है, आप इस इतने बड़े भूमंडल को लीला से अनायास ही धारण करते हैं। इसमें

आपको तनिक भी श्रम नहीं होता। आप को पता भी नहीं चलता कि हमारे सिर पर कोई वस्तु रखी है। सब की स्थिति के कारण भी आप ही हैं।

प्रलय काल में जब सब वस्तुओं का संहार होने लगता है, तब संहार होते होते केवल आप ही शेष रह जाते हैं, आप का कभी संहार नहीं होता, इसीलिये आप को शेषनारायण कहते हैं। आप एकमात्र, केवल, ब्रह्म तथा अद्वय हैं। आपके पादपद्मों में प्रणाम है।

भगवन्! संसार को आप ही सम्हाले रहते हैं, आप ही इसकी स्थिति बनाय रहते हैं, आप ही चराचर विश्व का पालन करते हैं। आप त्रिगुणातीत हैं, शुद्ध सत्व में सर्वदा निवास करते हैं। इस समय सब लोग आप को क्रोध में देखते हैं। समझते हैं, कि आप क्रोध में भर के हस्तिनापुर को उलटना चाहते हैं, किन्तु आप में क्रोध का लेश भी नहीं। आपका क्रोध कुबुद्धियों को शिक्षा देने के ही निमित्त होता है, उनके ऊपर अपार अनुग्रह करने के लिये ही आप क्रोध का अभिनय करते हैं। संसारी लोग या तो किसी से द्वेष होने के कारण क्रोध करते हैं या मद मत्सर में भर कर क्रोध करते हैं। आपमें न मद मत्सर है और द्वेष तो होने का ही नहीं। क्योंकि द्वेष दूसरों से होता है। आपके लिये कोई भी दूसरा नहीं है। सभी अपने ही हैं। सभी आपके आश्रय में हैं।

प्रभो! जितने भी ये प्राणी हैं, चर अचर जीव हैं, सब की अन्तरात्मा आप ही हैं। विश्व में जितनी भी सूक्ष्म स्थूल तथा कारण शक्तियाँ हैं, उन सब शक्तियों को एकमात्र आप ही धारण करते हैं। समस्त शक्तियों के आश्रय आप सर्वशक्तिमान ही हैं। संसार की जितनी भी वस्तुयें हैं सभी व्यय शील हैं।

सभी का अन्त होता है, एकमात्र आप ही अविनाशी तथा अव्यय हैं। आप ही इस सम्पूर्ण विश्व के कर्ता हैं आपके द्वारा ही यह विश्व प्रपंच संचालित हो रहा है। आपके चरणों को हम शरण हैं। प्रभो ! हमारे अपराधों की ओर ध्यान न दें, हे शरणागत वत्सल ! हम आप के शरणागत हैं। हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। हमें इस अपार संकट सागर से बचाओ। हमारा उद्धार करो। आप के पुनीत पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। आपके चरणारविन्दों में बारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कौरवों की इस प्रकार की विनीत प्रार्थना सुनकर बलदेवजी प्रसन्न हुए। अपने पैरों पर पड़े साम्ब और लक्ष्मणा को उन्होंने उठाया, आशीर्वाद दिया, प्यार किया। फिर सब से मिल भेंटकर दहेज और वर वधू को लेकर द्वारका पुरी लौट गये। यह मैंने आप से कौरवों की श्री बलदेव स्तुति कही। अब जैसे जरासन्ध के बन्दी राजाओं ने भगवान् के समीप सन्देश-स्तुति भेजी है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

### छप्पय

भूमंडल धरि फननि लगै सरसों सम तुमकूँ।
करता भरता विश्व अभय बल देओ हमकूँ ॥
शिक्षा हित तव कोप द्वेष मत्सर नहिँ स्वामी।
तुम ही शेष महेश अखिल पति अन्तरजामी ॥
भूतात्मन् ! अव्यय ! अखिल ! सर्वशक्तिधर ! जगत्पति !
शरनागत पालक प्रभो ! हम सब की तुम एक गति ॥

### पद

राम ! बलराम ! चरन सिर नावें ।
हौ आधार जगत के तुमहीं, मूरख जन भरमावें ॥१॥
जब इच्छा क्रीड़ा की होवै, तब ही विश्व बनावें ।
ज्ञानी सकल खिलौना जगकूँ, तुमरो नाथ बतावें ॥२॥
सरसों सम भूमंडल धारौ, सब जग नाच नचावें ।
प्रलय काल में लीन होहिं सब, आप शेष रहि जावें ॥३॥
तुमरो क्रोध सीख हित स्वामी, जाते जन तरि जावें ।
बार बार पद पदुमनि बन्दैं, प्रभु अब पार लगावें ॥४॥

# कौरवगणकृत श्रीबलदेव स्तुति

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥१॥

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ।
लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥२॥

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया,
भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ।
अन्ते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः,
शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥३॥

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ।
बिभ्रतो भगवन् सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४॥

नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधराव्यय ।
विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥५॥

# जरासन्ध के बन्दी भूपतियों की सन्देश-स्तुति

( १०६ )

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्न भयभञ्जन।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः॥

( श्रीभा० १० स्क० ७० अ० २५ श्लो० )

छप्पय

*दूत हाथ सन्देश कृष्ण ढिँग नृपनि पठायौ।*
*जरासन्ध दुख दयो देव ढिँग ताहि सुनायौ॥*
*करि बिनती नृप कहैं—कृष्ण भय भंजन जगपति।*
*भूलि तुमहिँ यह जीव सहै दुख पग पग पै अति।*
*दुष्ट दमन भगवन् सदा; सत पुरुषनि रच्छा करहु।*
*मायाँ मोहित महिप हम, नाथ! बिपति हमेरी हरहु॥*

---

* जरासन्ध के बन्दी गृह में पड़े राजा अपने उद्धार के लिये सन्देश भेजते हुए स्तुति-पूर्वक विनय करते हैं—हे श्रीकृष्ण! हे अप्रमेयात्मन्! हे प्रपन्न भय भंजन! हम भेद बुद्धि वाले संसार के भय से भयभीत हुए आपकी शरण में आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।

भगवान् के सम्मुख स्वयं मन से प्रार्थना करो, वचन द्वारा करो, किसी के द्वारा करवाओ कैसे भी क्यों न करो, वह कभी निष्फल नहीं जाती। इसलिये कि भगवान् सर्वसमर्थ हैं। घट घट व्यापी हैं, सब के मन की जानने वाले हैं, उन से कोई बात छिपी तो है नहीं, वे शरणागत की रक्षा अवश्य करते हैं। जीव अपने दुःखों को मिटाने के लिये इन संसारी लोगों के सामने दीनता दिखाता है, गिड़ गिड़ाता है, जो स्वयं ही दुखी है, भला जिसे स्वयं ही सर्प ने काट लिया है, वह दूसरों की सर्प से कैसे रक्षा कर सकता है। यदि संसारी अल्पज्ञ प्राणियों की आशा छोड़ कर भगवान् के सामने रोवे, उनके समीप किसी सत पुरुष द्वारा संदेश पठावे, तो वह संसार रूपी कारावास से सदा के लिये विमुक्त बन सकता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिन मंडलीक राजा ने जरासन्ध का अधीनता स्वीकार नहीं की थी, उन सब को उसने पकड़ पकड़ कर गिरिव्रज के कारावास में बन्द कर दिया था। वे नृपतिगण कारावास में बड़े कष्ट से समय बिता कर भगवान् का ध्यान करते हुये काल यापन कर रहे थे। जब उन्होंने भगवान् की दयालुता कृपालुता भक्त वत्सलता की बात सुनी तो उन्होंने एक स्तुतिमय आवेदन पत्र भेजा। उस प्रार्थना पत्र को ले कर एक चतुर दूत गया। पत्र में उन राजा लोगों ने स्तुति करते हुये निवेदन किया था।

भगवान् की स्तुति करते हुये नृपति गण सन्देश द्वारा भगवान् से प्रार्थना करते हैं—"हे कृष्ण ! हे सर्वाकर्षक कृष्ण ! आपकी महिमा की कोई सीमा नहीं। वह निस्सीम है। आप अप्रमेयात्मा हैं। जो आपको शरण में जाते हैं आप उनके भय को नाश कर देते हैं, आप शरणागत भयभंजन हैं। प्रभो !

आपकी अभेद बुद्धि है। हम लोग भेद बुद्धिवाले हैं। इस संसार के भय से भयभीत होकर आर्तभाव से आपकी शरण मे आये हैं।

प्रभो! जब यह जीव गर्भ में रहता है, तो आपकी भाँति भाँति से स्तुति करता है, तब आप उसे अपनी पूजा का उपदेश देते हैं। जीव के लिये यही परम कल्याणकारी कर्म है, किन्तु प्रभो! जब यह प्राणी संसार में आता है, इसे बाहर की वायु लगती है, तो अपनी सब प्रतिज्ञाओं को भूल जाता है। निरन्तर काम्य कर्मों में ही निरत बना रहता है। देह को ही आत्मा मानने लगता है, जो कुछ भी करता है देह के उद्देश्य से। सोचता है मेरी देह ऐसी ही सदा बनी रहे। इसमें रोग न हो, वृद्धावस्था न आवे, किसी प्रकार का दुख न हो, मृत्यु न होने पावे। मृत्यु से बचने के भाँति भाँति के उपाय करता है। वह आने वाली ध्रुव मृत्यु को भूल कर हो भाँति भाँति के पाप करता है असावधान रहने से हमें कभी मरना भी है, इस बात का उसे विस्मरण हो जाता है, किन्तु आपतो सदा सर्वदा सावधान ही बने रहते हैं। आप समस्त बलवानों से भी अत्यधिक बलवान् हैं। आप काल रूप से आते हैं और उसकी जीने की आशा को निराशा के रूप में परिणित कर देते हैं। उस विमूढ़ बने व्यक्ति की समस्त आशाओं पर पानी फेर देते हैं। ऐसे काल रूप आप परम पुरुष के पाद पद्मों में हमारा प्रणाम है।

प्रभो! हम आपको भूल जाते हैं, किन्तु आप तो हमें नहीं

भूलते। आप जगदीश्वर हैं, जगन्नाथ हैं। आपका अवतार असत् पुरुषों के दमन करने के निमित्त तथा सत् पुरुषों के संरक्षण के निमित्त ही हुआ है। आप इस लोक में अपनी कलाओं के सहित अवतीर्ण हुए हैं। इस समय आपके शरणागतों को, आपके अनुगत भक्तों को किसी प्रकार का कष्ट न होना चाहिये और जो दुष्ट हैं, बलवान् हैं, अपने ऐश्वर्य के अभिमान में भरकर आपके आश्रितों पर अत्याचार करते हैं, उनका भी अब ऐसा साहस न होना चाहिये। किन्तु स्वामिन! हम अब देख रहे हैं, सर्वथा इसके विपरीत ही। हम आपके भक्त कारावास में पड़े क्लेश उठा रहे हैं और अन्यायी अत्याचारी जरासन्ध अपनी मनमानी कर रहा है। इसे आप रोकते नहीं। या तो हमारा भाग्य ही ऐसा है, कि आपके सम्मुख ही जरासन्ध हम पर अत्याचार करता रहे, क्यों कि शुभ या अशुभ कर्म जो हमने पूर्व जन्मों में किये हैं उनका फल तो हमें अवश्य भोगना ही पड़ेगा। किन्तु आप के देखते-देखते हम क्लेश उठावें यह आपके अनुरूप नहीं। हम किन कर्मों का यह फल भोग रहे हैं यह हमें ज्ञात नहीं। इससे हम अनभिज्ञ हैं।

हे दीनबन्धो! हम सुख के अभिलाषी हैं, किन्तु हैं फल की इच्छा से कर्म करने वाले। जो वासना युक्त है वह अशान्त है और अशान्त को कभी सुख की प्राप्ति हो नहीं सकती। सुख तो निष्काम पुरुषों को आप ही से अपने ही अन्तःकरण में प्राप्त है। उसकी सिद्धि के लिये अन्य की अपेक्षा नहीं, क्योंकि

यह तो स्वतः ही सिद्ध है। हम लोग आपकी माया से दीन हीन बन गये हैं, काम्य कर्मों के जंजाल में फँस गये हैं, इसीसे शाश्वत सुख को प्राप्त न करके हम कारावास के महान कष्टों को उठा रहे हैं। हमारी आशा अभी लगी है, कि हमें राज्य सुख अभी फिर मिल जायगा। फिर हम अपने बाल बच्चों से अपनी पत्नियों से मिलेंगे, उनके साथ सुखोपभोग करेंगे। यदि वास्तव में देखा जाय, तो यह राज्य सुख क्या है, अपने को परतन्त्र बनाना है प्रजा की, मंत्रिमंडल की, अधिकारियों की इच्छा के अधीन होकर चलना है। यह भी नहीं कि यह राज्य सुख शाश्वत हो, यह तो स्वप्न के समान अनित्य और क्षण भंगुर है। सभी को राज्य सुख मिलता भी नहीं। यह भी प्रारब्ध के अधीन है।

स्वामिन्! जिस शरीर की सावधानी के लिये हम इतने प्रयत्न शील रहते हैं वह शरीर भी निरन्तर भय का स्थान है। पग पग पर शरीर में भय ही बना रहता है। यह तो शव के समान है। तिस पर भी हमने अपनी स्त्रियों का, सगे सम्बन्धियों का भार अपने सिर पर लाद रखा है। उनके लिये हम स्वयं चिंतित बने रहते हैं।

प्रभो! यह जरासन्ध ही हमारा कर्म बन्धन है। इसी ने हमको कष्ट में डाल रखा है। स्वामिन्! यह साधारण नहीं है, इस अकेले में ही दश सहस्र हाथियों का बल है। हम भी अपने को शूरवीर नरसिंह लगाते थे, किन्तु इस प्रबल

पराक्रमी के सम्मुख हमारा बल- पौरुष कुछ भी नहीं चला। इस अकेले ने ही हम सबको इस प्रकार अपने वश में कर रखा है जिस प्रकार बहुत सी भेड़ बकरियों को अकेला सिंह अपने वश में कर रखता है। हे शरणागत वत्सल विभो! आप सदा अपनी शरण में आने वालों के दुःख को दूर करते हैं। हमें इस कारावास से मुक्त कीजिये

हे उदात्त चक्र! हे किसी से भी न जीते जाने वाले प्रभो! आपने ही इस दुष्ट के साहस को इतना बढ़ा दिया है। आपने ही इसके अभिमान को बढ़ाने में प्रोत्साहन दिया है। इसने अठारह बार आप की मथुरा पुरी पर चढ़ाई की और आपसे घन घोर युद्ध किया। आपने यद्यपि सत्रह बार इसका मान मर्दन किया, युद्ध में इसे परास्त किया, किन्तु इसे मारा नहीं। इसने भी साहस नहीं छोड़ा। जब अठारहवीं बार इसने पुनः चढ़ाई की और आपने मनुष्यलीला करने के लिये इसे विजयी बना दिया, आप रण को छोड़ कर अपनी पुरी को परित्याग करके द्वारका को भाग गये, तबसे इसके अभिमान की सीमा ही नहीं रही। यह अपने को सबसे श्रेष्ठ शूरवीर दिग्विजयी और चक्रवर्ती समझने लगा। हमको अपनी प्रजा समझ कर, अत्यंत गर्वित होकर, हमारे ऊपर बड़े बड़े अत्याचार करने, लगा हमें मनमाना दंड देने लगा।

भगवन्! हम तो अब सभी प्रकार साधन हीन हैं। सभी प्रकार के भोगों से वंचित हैं, स्वयं किसी प्रकार का पुरुषार्थ

करने में भी समर्थ नहीं है। हमने अपनी विनती आपके चरणों तक पहुँचा दी है, अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें। हम शरणागतों को उद्धार के योग्य समझते हों तो अविलम्ब आकर हमारा उद्धार करें, यदि हमारा कल्याण इसी में समझते हों कि हम यहीं इस दुष्ट के कारावास में घुल घुल कर मरें, तब तो हम यहाँ आपका स्मरण करते हुए पड़े ही हैं।" • ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! बन्दी राजाओं के इस सन्देश को सुन कर भगवान् उद्धवादि अपने मंत्रियों की सम्मति से पृथक धर्मराज के राज सूय यज्ञ में गये और वहाँ से अर्जुन भीम को साथ लेकर जरासन्ध की पुरी में पहुँचे। वहाँ भीम द्वारा जरासन्ध को मरवा कर सभी बन्दी राजाओं का उद्धार किया। यह तो मैंने बन्दी राजाओं की सन्देश स्तुति-कही, अब जरासन्ध के कारावास से छूटने पर राजाओं ने जैसे भगवान् की स्तुति की, उसे मैं आगे कहूँगा।

### छप्पय

पावैं सुख निष्काम हिये में सो हम त्याग्यो।
सुत दारा धन राज विषय सुख ई भल लाग्यो॥
शवसम मलिन शरीर समुझि सब कछु दुख पावैं।
पराधीन हरि परे आपु ई आइ छुड़ावैं॥
जाकों सत्रह बार प्रभु, तुम ने मद मरदन करयो।
समुझै जीते कृष्ण हौं, अब जाको अघ घट भरयो॥

## पद

नाथ ! हम वन्दी अति दुख पावें।
शरनागत भय भजन स्वामी, अपनी विथा सुनावें ॥१॥
तव पूजन तें विमुख भये हम, बार बार पछितावें।
भजन विना सब दुख अति पावें, पुनि पुनि आवें जावें ॥२॥
तव चरननि में प्रानी आवें, सब संकट विसरावें।
भक्ति हीन ह्वै मायावश या हम यदुपति बिललावें ॥३॥
प्रभु चरननि में आरत ह्वै कें, अपनी दशा सुनावें।
अब इच्छा है नाथ तिहारी, आवें या विसरावें ॥४॥

# वन्दी नृप स्तुति

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥१॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः,
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां,
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥२॥

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः,
सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ।
कश्चित् त्वदीयमतियाति निदेशमीश,
किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥३॥

स्वप्नायितं नृप सुखं परतन्त्रमीश,
शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं,
क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥४॥

तन्नो भवान् प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो,

बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको,
विभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥५॥
यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र,
भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो,
युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद् विधेहि ॥६॥

# जरासन्ध के बन्दी गृह से छूटे राजाओं की श्रीकृष्ण स्तुति

( ११० )

**नमस्ते देव देवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।**
**प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः ॥**

( श्रीभा० १० स्क० ७३ अ० ८ श्लोक )

छप्पय

*जरासन्ध की कैद मुक्त जब भये नृपतिगन ।*
*इस्तुति सब मिलि करें कृष्ण अव्यय आनँदघन ॥*
*शरनागत प्रतिपाल शरन तुमरी हम लीन्हीं ।*
*राज, कोष, धन रहित करे शिक्षा शुभ दीन्हीं ॥*
*नाथ ! भये जब श्रीरहित, विनय भक्ति तबई जगी ।*
*गर्व हीन ह्वै गये प्रभु, शरनागति अच्छी लगी ॥*

---

* जरासन्ध के बन्दी गृह से छूटे भूपतिगण भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे देव देवेश्वर ! हे प्रपन्न पारिजात ! हे अव्यय ! आपको नमस्कार है। हम लोग घोर संसृति से निर्विण्ण हो चुके हैं। हे कृष्ण ! हम प्रपन्नों की आप रक्षा करें।

मानव स्वतः तो सरल प्रानी है। बालक को देखिये न अभिमान न अहंकार, छोटे बड़े का भेद भाव नहीं। मान अपमान का ध्यान नहीं। किसी से वैर, द्वेष नहीं। जिसने प्रेम से बुलाया उसी के पास चले गय। जब उसका वर्ण से, आश्रमसे, पद प्रतिष्ठा से, सगे सम्बन्धी परिवार से, विद्या, धन, राज, ऐश्वर्य तथा संसार में प्रतिष्ठित समझी जाने वाली अन्य वस्तु से सम्बन्ध हो जाता है, तब उनके संसर्ग से उसका अभिमान बढ़ जाता है। वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अपने को अधिक सम्मानित प्रतिष्ठित तथा पूजा योग्य समझता है। वह अभिमान में भरकर दूसरे लोगों का अपमान करता है। वह धन विद्या या ऐश्वर्य के मद में ऐसा मदान्ध बन जाता है, कि उसे कुछ सूझता ही नहीं। इस प्रकार धन के मद में अन्धे हुए लोगों के लिये दरिद्रता ही सबसे बड़ा सुखकर हितकर अंजन है। जब वह श्रीहीन हो जाता है,दरिद्र हो जाता है, तब उसकी बुद्धि ठिकाने आती है। पहिले धन के मद में भरकर जिन निर्धनों का उसने अपमान किया था, जब उन्हीं की श्रेणी में वह जाता है, दूसरे धनी उसका भी अपमान करते हैं, तब उसे भगवान् याद आते हैं। अतः ऐश्वर्य हीन हो जाना भी यह भगवान् की परम अनुकम्पा है। भगवान् जिसे अपनाना चाहते हैं, उसके धन को चुपके से हरण कर लेते हैं। यह सब वे उसके भले के लिये ही करते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! भगवान् ने भीम द्वारा जरासंध को जब मरवा दिया, तब उसके यहाँ जितने राजा बन्दी थे, वे सब भगवान् की आज्ञा से बन्धन मुक्त किये गये। उन्होंने भगवान् के प्रति अत्यंत प्रेम प्रकट किया। अत्यधिक कृतज्ञता जताते हुए वे भगवान् की स्तुति करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् की स्तुति करते हुए नृपति गण कह रहे हैं—"हे देवेश्वरों के भी ईश्वर ! हे शरणागत वत्सल श्री कृष्ण ! आप अपनी शरण में आने वालों के समस्त भयों को भगा देने वाले हैं। आप अनादि तथा अविनाशी हैं। आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। स्वामिन् यह संसार असार है, अत्यन्त ही घोर है, इसमें कष्ट ही कष्ट है, जिसे हम सुख समझे बैठे थे, वह दुःख निकला। इन्हीं सब कारणों से हम इस जगत से, इस प्रपंच से उदासीन हो गये हैं, इसीलिये निर्विण्ण होकर आपकी शरण मे आये हैं। आप हमें अपनावें, हमारा पालन करें।

प्रभो ! बहुत से लोग कहते हैं—"अमुक ने हमें दुःख दिया। अमुक के कारण हमें ये यातनायें सहन करनी पड़ीं। वे लोग भूल जाते हैं कि कोई भी किसी को सुख दुःख नहीं दे सकता। शिव स्वरूप आप के सभी कार्य शिव ही होते हैं। भला कल्याणकारी के कार्य अकल्याणप्रद कैसे हो सकते हैं ? अतः हे मधुसूदन ! हम इस जरासन्ध को भी किसी प्रकार का दोष नहीं देते, कि इसने हमें कारावास में डालकर चिरकाल तक यातनायें दी। इसने हमारा राज्य छुड़ा दिया। हम लोग अब अनुभव करने लगे हैं, कि इसके द्वारा जो हमारा राज्य अपहरण किया गया, हम राज्यच्युत किये गये, इसमें भी आपकी असीम कृपा भरी हुई थी। यह भी आप को अनुपम अनुग्रह ही थी।

स्वामिन् ! संसार में मद होने के अनेक कारण हैं, उनमें राज्य तथा ऐश्वर्य ये दो अत्यंत ही प्रबल कारण हैं। इनके मदसे मदमत्त हुआ मानव अपने कल्याण के कार्य नहीं कर सकता। वह तो आपकी मोहिनी माया के मद में मदमत्त होकर नित्य को अनित्य और चंचल को निश्चल मान बैठता है, उसकी बुद्धि विपरीत बन

जाती है, वह संसारी विषयों को ही सर्वसुखों का साधन समझने लगता है। जैसे बालू में दूर से मृग मरीचिका जल दिखाई देता है और प्यासा मृग उसी को जल समझकर दौड़ता रहता है, उसी प्रकार आपकी विकारमयी माया को ही-विषयों को ही सुख समझकर वह उनकी ओर दौड़ता है और अपने जीवन से हाथ धो बैठता है।

हे देवाधिदेव! पहिले हमें अत्यधिक अभिमान था, कि हम राजा हैं, नरपति हैं, पृथ्वीश हैं। इस मद में भर कर हम मदान्ध हो गये थे, परस्पर में एक दूसरे से ईर्ष्या रखते थे। अपने प्रतिद्वन्दी को जीतने के निमित्त चतुरंगिनी सेना सजाकर सदा युद्ध ही किया करते थे। हम काल रूप आप को भुलाकर अपने को अजर अमर मान बैठे थ। आप सदा सावधानी से हमारे सम्मुख रहते हैं, इसका हमें भान ही नहीं होता था, निर्दयता पूर्वक सैनिकों का संहार करते और कराते। इस प्रकार अपनी ही प्रजा का विनाश सदा करते रहते। निर्दयता पूर्वक प्राणियों के प्राणों का अपहरण करते रहते।

प्रभो! आप अनन्तवीर्य हैं, बलियों से भी बली हैं, आपकी गति अप्रतिहत है, आप दुर्निवार हैं। काल आपका ही स्वरूप है। आप किसी का शील संकोच नहीं करते। अपने नियम से सदा वर्तते रहते हैं। इस समय काल रूप आप श्री कृष्ण की गंभीर गति से हम राज्य हीन, धन हीन तथा श्री हीन हो गये हैं। अब हमारा समस्त गर्व खर्व हो गया। हमारा जो राजापने का अभिमान था, वह चकनाचूर हो गया, अब हमें आपके पाद पद्मों के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय ही दिखायी नहीं देता। अतः अब हम निरभिमान वगर्व रहित होकर आपके पादारविन्दों का स्मरण करते हैं।

प्रभो ! यह मानव इसलोक में हमें शरीर सुख मिले और मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति हो इसी के लिये सतत प्रयत्न करता रहता है। विचार पूर्वक देखा जाय, तो यह शरीर है क्या ? यह स्थायी रहने वाला नहीं। क्षण क्षण में क्षीण होने वाला है। मलों का आलय है। रोगों का घर है। रोगों की क्रीड़ा भूमि है, मनोरञ्जन का स्थान है। कितने रोग शोक इसमें भरे हैं इसकी गणना नहीं। इसी अनित्य तथा विकारी शरीर द्वारा राज्य-सुखों का उपभोग किया जाता है, वे सुख भी सत्य नहीं, यथार्थ सुख भी नहीं। मृग तृष्णा के समान देखने में लुभावने तथा भ्रम पैदा करने वाले हैं। इसका हमें अब ज्ञान हो गया। इससे अब हमें इन विषयभोगों की इच्छा नहीं। रही स्वर्ग सुख की बात सो वह भी श्रुत मधुर बातें हैं। मरने पर यह मिलेगा वह मिलेगा, ऐसे स्वर्गीय सुख प्राप्त होंगे ये बातें सुनने में ही अच्छी लगती हैं, वास्तव में इनमें भी कोई तत्व नहीं। ये भी नश्वर तथा क्षण भंगुर हैं, अतः इनकी भी हमें अब इच्छा नहीं रही।

स्वामिन् ! अब तो हमें अपने चरणों की शरण में लेलीजिये। हम यह नहीं कहते कि हमारा अब आवागमन छूट जाय, हम जन्ममरण के चक्र से विमुक्त बन जायँ। यदि कर्मवश हमें विविध योनि में भटकना पड़े तो भले ही भटकें, हमें अनेक बार जन्म लेना पड़े तो भले ही जन्म लें, किन्तु जिस जिस योनि में जन्म लें, कर्मवश जिस शरीर से उत्पन्न हों, वहाँ आपके चरणारविंदों की स्मृति बनी रहे, यही हमारी आपके सम्मुख भीख है। यही हमारी आपके पादपद्मों में विनीत प्रार्थना है।

प्रभो ! आप सर्वाकर्षक हैं, प्राणीमात्र आपकी ओर आकर्षित होते हैं। अतः आपको नमस्कार है। आप महाभाग वसुदेवजी के

पुत्र हैं। सर्वत्र बसते हैं, आपकी वासना सर्वत्र व्याप्त है ऐसे वासुदेव स्वरूप आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। आप समस्त पापों को हरण करने वाले हैं, ऐसे हरी भगवान् को हम वारम्वार अभिवादन करते हैं। आप परमात्मा हैं, परमपुरुष परमेश्वर हैं, आपको वारम्वार नमस्कार है। आप अपनी शरण में आने वालों के समस्त दुःखों को दूर करने वाले हैं ऐसे प्रणत क्लेश नाशक प्रभु के पादपद्मों में प्रणाम है। आप इन्द्रियों के गौओं के, पृथिवी के तथा समस्त विश्व ब्रह्मांड के पालनकर्ता हैं ऐसे गोविन्द को वारम्वार नमस्कार है। गोविन्दाय नमो नमः, गोविन्दाय नमो नमः, गोविन्दाय नमो नमः।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार कारागृह से विमुक्त हुए राजाओं ने अत्यंत आर्त भाव से भगवान् की स्तुति की भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और सहदेव से उनकी पूजा करके उन्हें धन रत्न रथादि वाहन देकर अपने अपने राज्यों को विदा कर दिया। यह मैंने जरासन्ध के बन्दीगृह से छूटे राजाओं की स्तुति कही, अब जैसे सुदामा जी ने भगवान् की स्तुति की उसे मैं आगे कहूँगा।

### छप्पय

नहीं भोग अभिलाश न अब जग के सुख चायें।
नहीं पुन्य फल मिलें स्वरग में सुर बनि जायें॥
जा जा जनमें जोनि भूलि पद पदुम न जावें।
सेवक किंकर जानि नाथ हम कूँ न भुलावें॥
बासुदेव श्रीकृष्ण हरि, दुख भंजन तव काम है।
प्रभु पद पदुमनि में सतत, बारम्बार प्रनाम है॥

## पद

कृपा करि हम धनहीन बनाये।
धन मद में मदमाते ह्वै कें, प्रभु पद पदुम भुलाये ॥१॥
राजा हैं हम शूर वीर वर, अतिशय अज इतराये।
लड़ैं परसपर काटैं मारैं, अगनित जन मरवाये ॥२॥
अपने सरिस न समझैं औरनि, बहुबन्दी बनवाये।
आजु स्वयंबन्दी बनि रोवैं, सुख सबरे बिसराये ॥३॥
अब न राज, धन इच्छा यदुवर, विषय भोग नहिं भाये।
प्रभु चरननि की शरन गही अब, बार बार सिर नाये ॥४॥

# विमुक्त नृप स्तुति

राजान ऊचुः

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान घोरसंसृते ॥१॥
नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ।
अनुग्रहो यद्‌ भवतोराज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥२॥
राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ।
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः ॥३॥
मृगतृष्णां यथा वाला मन्यन्त उदकाशयम्‌ ।
एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥४॥
वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो,
जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः ।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिघृ णाः प्रभो,
मृत्युं पुरस्त्वाविगण्य दुर्मदाः ॥५॥
त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा,
दुरन्तवीर्येण विचालिताःश्रियः ।

कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया,
विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥६॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं,
देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा।
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो,
क्रियाफलं प्रेत्य च कर्मरोचनम् ॥७॥

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः।
स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥८॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥९॥

# श्री सुदामा कृत श्री कृष्ण स्तुति

( १११ )

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य
शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो—
नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ❀
( श्री भा० १० स्क० ८१ अ० ३३ श्लो० )

छप्पय

*मिटी सुदामा विपति अतुल सम्पत्ती आई।*
*जामें हरि की कृपा विप्रकूँ दई दिखाई॥*
*सोचें—"हो अति भाग्यहीन धनहीन दरिद्री।*
*दया दृष्टि प्रभु करी, सहज सब मिलीं समृद्धी॥*
*नीच कंगला माँगिवे, हौं यदुनन्दन घर गयो।*
*नहीं दयो प्रत्यक्ष प्रभु, चुपके धन घर भरि दयो॥*

---

❀ भगवान की कृपा का स्मरण करते हुए सुदामा जी कह रहे हैं—"यह निश्चित बात है कि यदूत्तम भगवान् श्री कृष्ण के कृपा कटाक्ष के अतिरिक्त मेरी महाविभूति के उत्कर्ष का अन्य कोई कारण नहीं है। क्योंकि मैं तो सदा का दरिद्री तथा भाग्यहीन ही था।

याचक को जता कर, सबको दिखाकर, उसके ऊपर कृतज्ञता का भार लाद कर यदि कोई दाता माँगने पर याचक को कुछ प्रत्यक्ष में दे देता है, तो वह उत्तम दाता कभी नहीं कहा सकता। वह तो कीर्ति का व्यापारी तथा दाता कहलाने का लोभी है। उत्तमदाता तो वह है जो याचक के मन की बात जान कर—उसके वाणी से बिना कहे चुपके से बिना दिखावे के उसके यहाँ अप्रत्यक्ष में पहुँचा देता है। वह याचक को अपने किसी व्यहार से लज्जित नहीं करता।

एक दाता थे, उनके घर में नौ द्वार थे। वे सभी द्वारों पर जाकर भिक्षा दिया करते थे। एक दिन साक्षात् भगवान् भिखारी का वेष रख कर आये। पहिले द्वार पर दाता की बड़ी प्रशंसा की भिक्षा ली, फिर दूसरे पर पहुँच गये। नौ द्वारों पर इसी प्रकार गये। उसने उनकी ओर दृष्टि उठा कर देखा भी नहीं। नेत्र नीचे करके दे देते थे। नवें द्वार पर भिक्षुक बने भगवान् ने कहा—

> नऊ दुआरे फिरि गये, कहे न कड़वे बैन।
> मैं ताइ पूछूँ हे सखे, कैसे नीचे नैन॥

मैं तुम्हारे नौ द्वार पर माँगने गया। तुमने बिना कुछ कहे सब द्वारों पर दिया। कभी यह भी नहीं कहा कि आप तो पहिले ले गये हैं। अस्तु, यह तो आपकी उदारता है, किन्तु एक बात मेरी बुद्धि में नहीं आ रही है, कि आप इतने लज्जित होकर क्यों देते हैं। किसी से आँखें क्यों नहीं मिलाते, सिर नीचा क्यों किये रहते हैं? इस पर उसने कहा—

> देने वाला और है, देता है दिन रैन।
> लोग भरम मेरो करैं, जातें नीचे नैन॥

भगवान् जिसे देते हैं गुप्त रूप से देते हैं। जो गुप्त रूप से

प्राप्त धन को भगवान् का दिया हुआ समझ कर उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता है, वही सच्चा भगवत् भक्त है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सुदामा जी जब भगवान् के यहाँ द्वारकापुरी में अपनी स्त्री के आग्रह से गये, तो भगवान् ने प्रत्यक्ष में कुछ भी नहीं दिया, किन्तु चुपके से उन्हें राजाओं का सा ऐश्वर्य प्रदान कर दिया। इसपर भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए सुदामा जी कह रहे हैं—"अहा! भगवान् कितने दयालु हैं, कितने भक्त वत्सल हैं। उन्होंने बिना माँगे ही मुझे इतना अपार ऐश्वर्य दे दिया। यह मैंने अपने पुरुषार्थ से थोड़े ही प्राप्त किया है। भगवान् ने केवल मुझे देख भर दिया था। उनकी कृपा मय दृष्टि का ही यह परिणाम है कि आज मुझे अतुल सम्पत्ति प्राप्त हो गई। यदि वे मुझे प्रत्यक्ष देते तो मैं लज्जा से सिर नीचा कर लेता, मेरी दृष्टि ऊँची उठती ही नहीं। मैं अपने को उनके सम्मुख भिक्षुक अनुभव करता। इसी लज्जा को बचाने को, अपना दातापन न दिखाने को उन्होंने चुपके से यह ऐश्वर्य मेरे यहाँ उपस्थित करा दिया। जैसे किसान घर में सोता रहता है, इन्द्रदेव उसके परोक्ष में जाकर उसके खेत को भर आते हैं। भगवान् तो भक्त को सब कुछ दे डालते हैं।

वे इतने उदार हैं, कृतज्ञ हैं, कि उनका कोई तनिक भी उपकार करदे उसे ही वे बहुत मानते हैं और स्वयं वे चाहे जितना देदें उसे भी अत्यंत ही अल्प समझते हैं, यही नहीं उन्हें देने में भी लज्जा लगती है, स्वयं देते भी नहीं किसी के द्वारा दिलवाते हैं। मैं उन त्रिलोकीनाथ को क्या देने योग्य हूँ, मेरे पास देने को रखा ही क्या था। इधर उधर से जुटाकर—उन्हीं के कृपा प्रसाद से प्राप्त करके—उन्हीं के द्वारा दिये हुए मुट्ठी भर चिउरा मैंने डरते डरते उन्हें भेट किये थे, उनको ही उन्होंने बहुत

माना ये कृतज्ञता के भार से दब से गये। कितने उल्लास से, कितने प्रेम से, कितनी उत्सुकता प्रकट करते हुए उन्होंने उन चावल की तुच्छ किनकी को ग्रहण किया।

मेरी उन सर्वान्तर्यामी प्रभु के पाद पद्मों में यही बारम्बार प्रार्थना है, कि मैं जब जब जन्म लूँ, तब तब इसी प्रकार दीन हीन निर्धन तथा दरिद्री बनूँ, जिससे वे दया के सागर सम्पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी मेरे प्रभु मुझे अपनावें। मेरे प्रति सौहार्द प्रकट करें। मुझे अपना तुच्छ सखा कह कर पुकारें। मुझे वे अपना मित्र कहें और मैं हृदय से सदा अपने को उनका दास मानता रहूँ। मुझे जन्म जन्मान्तरों में उनकी दासता प्राप्त होती रहे। उन समस्त गुणों के एकमात्र आश्रय सर्वोच्च भावना वाले श्री कृष्ण के पाद पद्मों मे मेरा अनुदिन अनुराग बढ़ता रहे। मुझे सदा उनके अनुगत शरणागत प्रपन्न भक्तों का सत्सङ्ग मिलता रहे।

मेरे स्वामी तो सर्वज्ञ हैं, परम विचारवान हैं। वे पात्र देख कर ऐश्वर्य सम्पत्ति देते हैं। या तो वे पतनोन्मुखों के मदको बढ़ाने को सम्पत्ति देते हैं, या परिपक्व विचार वाले अपने भक्तों को देते हैं। जो अपरिपक्व विचार वाले भक्त हैं उन्हें धनियों के सदृश ऐश्वर्य कदापि नहीं देते, क्योंकि उन्हें धन दे दें तो वे धन मद में उन्मत्त होकर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जायँगे। वे अनर्थ करने लगेंगे। परमार्थ पथ से च्युत हो जायँगे। इसीलिये वे दरिद्रता देकर उनकी रक्षा करते हैं। मेरे स्वामी कल्याण स्वरूप हैं, मंगलमय हैं, शिव स्वरूप हैं, उनके सभी कार्यों में भक्तों का कल्याण छिपा रहता है, वे सदा उनका मंगल ही चाहते हैं। ऐसे अपने परमाराध्य, अत्यन्त कृतज्ञ, दीनवत्सल प्रभु के प्रति मैं किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करूँ,

कैसे उनकी स्तुति करूँ ? क्या कह कर उनकी प्रशंसा करूँ ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार सुदामा जी ने भगवान् के प्रति अत्यंत ही आभार प्रदर्शित किया और वे संसारी भोगों का अनासक्त भाव से सेवन करते रहे। यह मैंने सुदामा जी की विनय आप से कही, अब जैसे कुरुक्षेत्र में मुनियों ने भगवान् की स्तुति की, उसको मैं आगे कहूँगा।

### छप्पय

जनम जनम में मिलै मोइ मैत्री हरि दुखहर।
सखा सुहृद निज दास मानि अपनावें यदुवर॥
सब सद् गुन के धाम श्याम पद नेह बढ़ै नित।
माधव मंजुल मूर्ति मधुर नित गढ़ी रहै चित॥
भक्तभाव भगवान् लखि, कच्चेकूँ धन देहिँ नहिँ।
धनमद में मदमत्त बनि, दास बिगरि जावे न कहिँ॥

### पद

कृष्ण सम दाता दूसर नाईं।
ऐसे परम उदार श्याम तजि, दास अनंत कहँ जाईं॥१॥
चामर की कछु किनकी दीन्हीं. प्रेम सहित प्रभु पाईं।
अब तक क्यों नहिँ प्रियवर आये, बार बार पछिताईं॥२॥
मागूँ भीख दीन ह्वै यदुवर, पद पदुमन के पाईं।
जनम जनम में मिले दासता, प्रभु चरननि लिपटाईं॥३॥

# सुदामाकृत श्रीकृष्ण स्तुति

नूनं वतैतन्मम दुर्भगस्य,
शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ।
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो,
नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥१॥

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं,
याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ।
पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणो,
दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥२॥

किंचित्करोत्युर्वपि यत् स्वदत्तं,
सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी ।
मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं,
प्रत्यग्रहीत् प्रीतियुतो महात्मा ॥३॥

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री,
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन,
विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥४॥

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदो,
राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ।
अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं,
पश्यन् निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥५॥

# कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण द्वारा ऋषि मुनियों की स्तुति

( ११२ )

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ।
देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वर दर्शनम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ८४ अ० ९ श्लो०)

छप्पय

*ग्रहन समय कुरुक्षेत्र बहुत ऋषि मुनिगन आये ।*
*करि स्वागत सतकार यादवनि सब बैठाये ॥*
*कृष्ण विनय बहुकरी मुनिनि की इस्तुति कीन्हीं ।*
*बोले—भये कृतार्थ बड़ाई मुनि अति दीन्हीं ॥*
*योगेश्वर दरसन भये, बड़भागी हम सब भये ।*
*जल तीरथ सुर-शिला नहिँ, साधु दरस समता लहे ॥*

---

* भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुरुक्षेत्र में ऋषि मुनियों की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"अहो ! हम देह धारियों को देह धारण करने का पूर्ण फल प्राप्त हो गया । इसलिये कि जिनका दर्शन देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, तिन योगेश्वरों का हमें दर्शन हो गया ।"

भक्त भगवान् की जैसे स्तुति करते हैं, वैसे ही भगवान् भी भक्तों की स्तुति करते हैं। भगवान् न भी चाहें तो उनसे रहा नहीं जाता, क्यों कि उनकी प्रतिज्ञा है—"यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" जो मेरा जैसे भजन करता है मैं भी उसका उसी प्रकार भजन करता हूँ। आप भगवान् पर एक टोकरी फूल चढ़ाओ तो वे तुमपर सैकड़ों टोकरी फूल चढ़वा देंगे। वे अपने भक्तों के इतने कृतज्ञ बन जाते हैं, कि सोचते रहते हैं मैं इसका कौनसा उपकार करूँ। वे भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये कातर बने रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सूर्य ग्रहण पर कुरुक्षेत्र स्नान का बड़ा महात्म्य होता है, इस लिये भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बहुत से यादवगण कुरुक्षेत्र में आये और वह डेरा तम्बू लगाकर कुछ दिन रह भी गये। वहीं सब की भेंट ब्रज के नन्दादि गोपों से भी हुई। उसी समय बहुत से ऋषि मुनि भी वसुदेव जी के डेरे पर आ पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने समस्त यादवों के सहित उन सबका आदर सत्कार किया। विधिवत् पूजा की और फिर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ऋषि मुनियों की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"महानुभावो! इस संसार में जन्म लेने का फल इतना ही नहीं कि पेट भर अच्छे अच्छे पदार्थों को खाया और शैया पर पड़े सोते रहे। मानव जन्म की सार्थकता तो साधु समागम में है। जिनको संत दरश प्राप्त हो गये, वे धन्य हो गये, कृतार्थ बन गये, वे वास्तव में कृतकृत्य हो गए।

प्रभो! आज हमने देह धारण करने का पूरा पूरा फल प्राप्त कर लिया, जो इतने ऋषि मुनि, संत महात्माओं का एक साथ हमें दर्शन मिल गया। आप सबके दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ

हैं। साधारण लोगों की तो बात ही क्या ? जिनका संसार बन्धन छूटने को ही होता है, उन्हीं को आपके दर्शन आपकी कृपा से ही प्राप्त होते हैं। आपके दर्शन अल्प तपस्या वाले स्वल्प सुकृति को संभव नहीं।

प्रभो ! जो स्वल्प तपस्या वाले हैं, जो भगवान् को केवल प्रतिमा में ही मानते हैं, आप लोगों को भगवान् का सचल विग्रह नहीं समझते। भगवान् को सीमित स्थान में मानकर सर्वव्यापक नहीं मानते, जिनको आप के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, जिन्होंने आपके पाद स्पर्श नहीं किये हैं, जिन्होंने विनम्र बन कर आप से कुशल प्रश्न नहीं किया है, जिन्होंने आप के पाद पद्मों में सर्वाङ्ग से साष्टाङ्ग प्रणाम नहीं किया है, जिन्होंने पाद्य, अर्घ्य आचमनादि से आपकी प्रेमपूर्वक पूजा नहीं की है उनका जीवन व्यर्थ है, ऐसे लोग भाग्यहीन हैं, भाग्यशालियों को ही ऐसे सुयोग प्राप्त हो सकते हैं।

बहुत से लोग नाना तीर्थों में भटकते हैं, यहाँ स्नान कर, यहाँ आचमन कर, यहाँ प्रणाम कर, बहुत से लोग मृत्तिका, पाषाण तथा अन्य धातुओं की बनी मूर्तियों को ही देव बुद्धि से पूजते हैं। केवल उन्हें ही देवता समझते हैं। जलाशयों में तीर्थ नहीं है सो बात भी नहीं वहाँ तीर्थ हैं। पाषाणादि विग्रहों में देव नहीं हैं सो भी बात नहीं। वहाँ भी देवता रहते हैं किन्तु जो तीर्थ और देवता को जलाशय और मूर्ति तक ही सीमित मान कर साधु संतों का सत्कार नहीं करते वे यथार्थ भक्त नहीं। भगवान् के दो विग्रह हैं अचल और सचल। अचल तो तीर्थ मंदिर देवालय प्रतिमा आदि और सचल साधु संत महात्मा गण। जो केवल अचल में ही पूज्य बुद्धि रखता है सचल का तिरस्कार करता है वह तो पशु के समान है। अचल से सचल

का महत्व अधिक है। तीर्थादि तो चिरकाल तक सेवन के अनंतर फल देते हैं, किन्तु साधु संत तो केवल दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं, इनके दर्शन का तो तत्काल ही फल प्राप्त हो जाता है। यहाँ उधार का सौदा ही नहीं।

बहुत से सूर्यनारायण की उपासना करते हैं, कुछ लोग वैश्वानर अग्निदेव का पूजन करते हैं। कुछ लोग चन्द्रमा, तारागण, पृथिवी, जल, आकाश, वायु या वाणी की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती की उपासना करते हैं, बहुत से लोग मन के अधिष्ठातृ देवों की अराधना करते हैं। ये सब देवतागण भी भेद बुद्धि वाले व्यक्ति को उपासना का पूरा फल नहीं देते। भेद भाव वाले को तो भय की ही प्राप्ति होती है, इसलिये उपासक के पापों का पूर्ण नाश नहीं होता, उस के अज्ञान का अन्त नहीं होता, किन्तु साधु संत ज्ञानी महात्मा की एक मुहूर्त भी सेवा कर लो तो वे समस्त अज्ञान को हर लेते हैं, पूरे पापों का विनाश कर देते हैं।

महात्मागण! हम मानवों में अधिकांश लोग ऐसे ही हैं, जो इस शरीर को, स्त्री पुत्रों को, सीमित तीर्थ और प्रतिमा को ही पूजते हैं, इन्हीं को सब कुछ समझते हैं। यह उनका अज्ञान ही है। सोचा जाय तो यह शरीर जिसमें प्राणी इतनी अधिक ममता रखता है, यह है क्या? यह वात, पित्त और कफ इन त्रिधातुओं का ढाँचा है, प्राणों की गति रुक जाय मिट्टी का पुतला है। वैसे भी शव के समान ही अमंगल है। इसमें जो आत्मबुद्धि रख कर इसी के पालन पोषण में व्यग्र बने रहते हैं वे अज्ञानी हैं। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, धन, परिवार आदि में जिनकी अत्यधिक ममता है, जो इन्हीं की चिन्ता में निमग्न रहते हैं, वे भी मूर्ख ही हैं क्योंकि ये सब भी अनित्य और क्षण भंगुर

है। इसी प्रकार केवल प्रतिमा में ही देवता समझकर पूजन करना भगवान् को सर्व व्यापक न मानकर अन्य सब का तिरस्कार करना, साधु सन्तों की भगवत् बुद्धि से पूजा न करके केवल पार्थिव पूजन में आग्रह करना यह भी अज्ञान का ही चिन्ह है। इसी तरह जलाशयों में ही तीर्थ बुद्धि रखना। साधु सन्तों के शरीर, में उनकी चरण धूलि में, उनके उच्छिष्ट प्रसाद में, उनके चरणोदक में जिनकी तीर्थ बुद्धि नहीं है वे तो गधे के समान हैं। केवल भार वाही हैं, सार ग्राही नहीं। गधे के ऊपर चाहें मिट्टी लाद दो, खाद लाद दो अथवा सुगंधित चंदन लाद दो, सब को वह बोझा ही समझेगा। उसमें विवेक नहीं, विचार नहीं, सारासार ग्रहण करने की क्षमता नहीं। साधु संत उस अलख ईश्वर की प्र[illegible] जो आदर [illegible] देव बुद्धि [illegible] व्यर्थ है। और जिन्हें भाग्यवश ऐसे साधु सन्तों के दर्शनों का कभी सौभाग्य प्राप्त हो गया है, उनका मानव जीवन सफल बन गया है। वे कृतार्थ हो गये हैं। आज इस पुण्य तीर्थ में आप सब के दर्शन हो गये, यथार्थ तीर्थ का फल तो हम लोगों को अब मिला है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् के मुख से अपनी ऐसी स्तुति सुन कर सभी ऋषि मुनि चकित हो गये, वे हक्के बक्के से होकर भगवान् का मुख देखने लगे, फिर उनमें से जो विशेषज्ञ थे, वे बोले—"अरे भाई! भगवान् ऐसी बातें लोक संग्रह के निमित्त कहते हैं, ऐसा आचरण संसारी लोगों को शिक्षा देने के निमित्त करते हैं जिससे दूसरे भी साधुसन्तों का आदर सत्कार करें। यह कहकर सब ऋषि मुनियों ने भी भगवान्

की स्तुति की। यह मैंने भगवान् की की हुई ऋषि मुनियों की स्तुति कही, अब बदले में जैसे ऋषि मुनियों ने भगवान् की स्तुति की, उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

सोमित जिनि की बुद्धि तपस्या जिनि कम कीन्हीं।
साधु संत में जिनिनि नहीं भगवत्ता चीन्हीं॥
तिनिकूँ पूजन संत नहीं शुभ अवसर आवै।
संत दरश तत काल फलैं, तीरथ न दिखावैं॥
ममता मेटैं मोहकूँ, भेद बुद्धि बन्धन करै।
जनम जनम के पाप सब, संत दरस छिनमें हरै॥

पद

संतगन भगवत रूप कहावैं।
साधु दरश जिनिने नहिँ पायौ, ते नर पशु कहलावैं॥१॥
संतनि दरशन सुर दुरलभ अति, भाग्यहीन नहिँ पावैं।
मिलै भाग्यवश संत चरन रज, तब सब अघ कटि जावैं॥२॥
दरस, परस, पद पूजन, इस्तुति, जो नहि करत अघावैं।
ते नर धनि धनि अति बड़ भागी, जग में पुनि नहिँ आवैं॥३॥
तीरथ जल, प्रतिमा में पत्थर, भावहि तैं फल पावैं।
संत सचल साकार स्वयं हरि, छिन में पाप नसावैं॥४॥
मैं मेरा मे फँसि कैं प्रानी, जग में दुःख उठावैं।
खर सूकर कूकर सम ते जन, जनमें फिरि मरि जावैं॥५॥

# भगवत्कृत ऋषि मुनि स्तुति

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम्।
देवानामपि दुष्प्रापं यद् योगेश्वरदर्शनम् ॥१॥

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम्।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥२॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ् मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥४॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके,
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि,
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥५॥

---